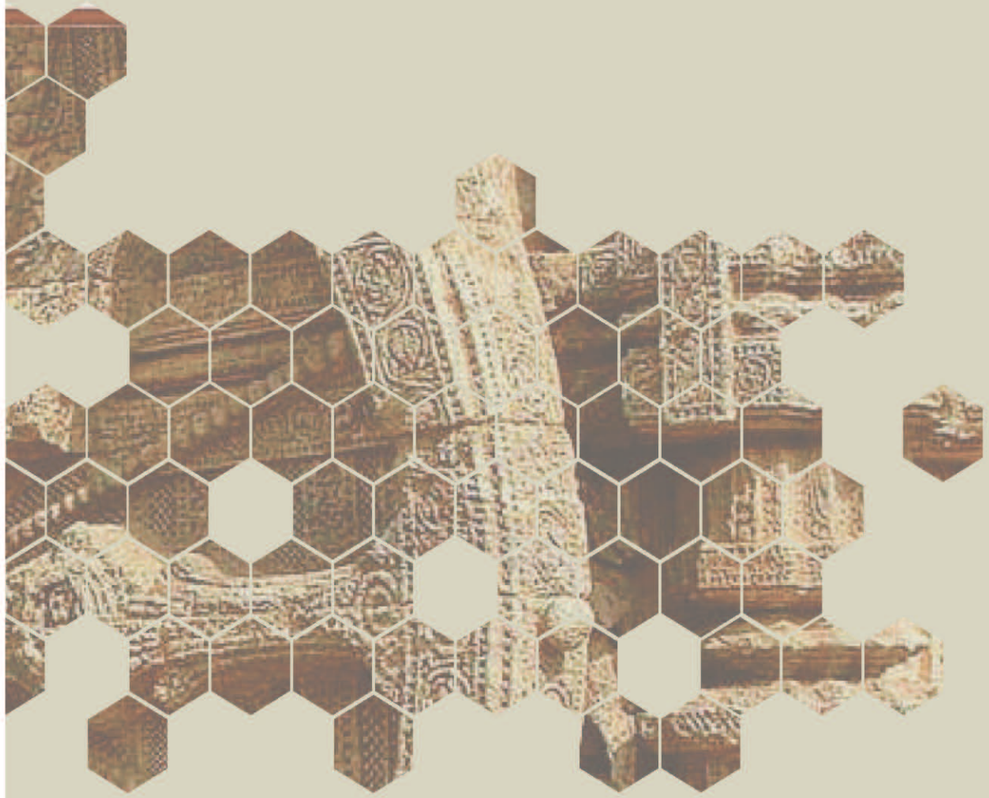

Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

हिन्दी साहित्य का इतिहास -I

Institute of **Open** and **Distance Education**

Faculty of Arts

हिन्दी साहित्य का इतिहास -I

1MAHIN5

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

1MAHIN5

हिन्दी साहित्य का इतिहास– ।

1MAHIN5

हिन्दी साहित्य का इतिहास– —I

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr. Shahid Hussain, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Aanchal Shrivastava, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Murli Singh Thakur, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Manju Bhatt, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Kalpana Abhishek Pathak, *Department of Hindi, Govt. College, Kotari, Mungeli, Chhattisgarh*

Miss. Pragya Sharma, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Course Editor:

- **Dr. Shraddha Hirkane , Associate Professor**
  Depatment of Hindi Kalinga University Raipur Chhattisgarh

Unit Written By:

1. Dr. Shahid Hussain

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Manju Bhatt

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. **Miss. Pragya Sharma**

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

ब्लॉक -I

इकाई -1 इतिहास, दर्शन और साहित्येतिहास_____1

1.1 प्रस्तावना
1.2 अध्ययन के उद्देश्य
1.3 साहित्येतिहास लेखन के विविध पक्ष
1.4 साहित्येतिहास लेखन की पद्धतियाँ
1.5 साहित्येतिहास लेखन की परंपरा
1.6 साहित्येतिहास पुनर्लेखन की समस्याएं
1.7 सार - संक्षेप
1.8 मुख्य शब्द
1.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.11 अभ्यास प्रश्न

इकाई - 2 हिंदी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन एवं नामकरण_____16

2.1 प्रस्तावना
2.2 अध्ययन के उद्देश्य
2.3 काल विभाजन एवं नामकरण की आवश्यकता
2.4 काल विभाजन एवं नामकरण का आधार
2.5 हिंदी साहित्य में काल विभाजन की समस्या
2.6 काल विभाजन के प्रयास
2.7 विभिन्न कालों में नामकरण सम्बन्धी विवाद
2.8 सार संक्षेप
2.9 मुख्य शब्द
2.10 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.12 अभ्यास प्रश्न

इकाई - 3 हिंदी साहित्य का आदिकाल _____39

3.1 प्रस्तावना
3.2 अध्ययन के उद्देश्य
3.3 आदिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि
3.4 आदिकाल: नामकरण और सीमा
3.5 आदिकालीन साहित्य के प्रेरक बिंदु
3.6 आदिकाल की परिस्थितियाँ
3.7 आदिकालीन साहित्य पर प्रभाव
3.8 सार संक्षेप
3.9 मुख्य शब्द
3.10 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.12 अभ्यास प्रश्न

इकाई - 4 आदिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ _____58

4.1 प्रस्तावना
4.2 अध्ययन के उद्देश्य
4.3 सिद्ध साहित्य
4.4 जैन साहित्य
4.5 नाथ साहित्य
4.6 रासो साहित्य
4.7 लौकिक साहित्य
4.8 सार संक्षेप
4.9 मुख्य शब्द
4.10 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.12 अभ्यास प्रश्न

ब्लॉक -II

इकाई - 5 हिंदी साहित्य का भक्तिकाल _____79

5.1 प्रस्तावना
5.2 अध्ययन के उद्देश्य
5.3 भक्ति का अर्थ एवं स्वरुप
5.4 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ
5.5 भक्तिकालीन साहित्य पर परिस्थितियों का प्रभाव
5.6 सार - संक्षेप
5.7 मुख्य शब्द
5.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.10 अभ्यास प्रश्न

इकाई - 6 संत काव्यधारा _____96

6.1 प्रस्तावना
6.2 अध्ययन के उद्देश्य
6.3 संत काव्यधारा अथवा ज्ञानमार्गी शाखा
6.4 संत काव्य परंपरा के प्रमुख कवि
6.5 संत काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
6.6 संत काव्यधारा का काव्य रूप
6.7 सार - संक्षेप
6.8 मुख्य शब्द
6.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.11 अभ्यास प्रश्न

इकाई - 7 सूफी काव्यधारा _____110

7.1 प्रस्तावना

7.2 अध्ययन के उद्देश्य

7.3 सूफी मत और सिद्धांत

7.4 सूफी प्रेम काव्य के प्रमुख कवि

7.5 सूफी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

7.6 सार - संक्षेप

7.7 मुख्य शब्द

7.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.10 अभ्यास प्रश्न

इकाई - 8 निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवि_____121

8.1 प्रस्तावना

8.2 अध्ययन के उद्देश्य

8.3 निर्गुणधारा (ज्ञानाश्रयी) के कवि

8.3.1 रैदास (रवि दास)

8.3.2 धर्मदास एवं सुन्दरदास

8.4 निर्गुणधारा (प्रेममार्गी शाखा के कवि)

8.4.1 कुतुबन एवं मंझन

8.4.2 नूर मोहम्मद

8.5 सार - संक्षेप

8.6 मुख्य शब्द

8.7 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.9 अभ्यास प्रश्न

ब्लॉक -III

इकाई - 9 सगुण काव्यधारा के प्रमुख सम्प्रदाय_____136

9.1 प्रस्तावना
9.2 अध्ययन के उद्देश्य
9.3 अद्वैत के विविध स्वरुप
9.4 वैष्णव संप्रदाय
9.5 रामानंद के गुरु शिष्य परंपरा
9.6 सार - संक्षेप
9.7 मुख्य शब्द
9.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
9.10 अभ्यास प्रश्न

इकाई -10 राममार्गी काव्यधारा _____148

10.1 प्रस्तावना
10.2 अध्ययन के उद्देश्य
10.3 राम काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
10.4 रामानंद की विशेषताएं
10.5 गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
10.6 रामभक्ति शाखा की मुख्य विशेषताएं
10.7 सार - संक्षेप
10.8 मुख्य शब्द
10.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
10.10 अभ्यास प्रश्न
10.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

इकाई - 11 कृष्ण काव्यधारा_____165

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 कृष्ण काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

11.4 कृष्ण काव्यधारा का स्वरुप

11.5 सूरदास दास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

11.6 कृष्णभक्ति शाखा की मुख्य विशेषताएं

11.7 सार - संक्षेप

11.8 मुख्य शब्द

11.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

11.10 अभ्यास प्रश्न

11.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

इकाई - 12 सगुण काव्यधारा के प्रमुख कवि_____179

12.1 प्रस्तावना

12.2 अध्ययन के उद्देश्य

12.3 सगुण काव्यधारा (रामाश्रयी शाखा के कवि)

12.3.1 तुलसीदास

12.3.2 नाभादास

12.3.3 केशवदास

12.3.4 सेनापति

12.3.5 प्राणचंद चौहान

12.3.6 हृदयराम

12.4 सगुण काव्यधारा (कृष्णाश्रयी शाखा के कवि)

12.4.1 सूरदास

12.4.2 परमानंद दास

12.4.3 कुम्भन दास

12.4.4 कृष्णदास

12.4.5 नंददास

12.5 सार - संक्षेप
12.6 मुख्य शब्द
12.7 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
12.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.9 अभ्यास प्रश्न

ब्लॉक -IV

इकाई -13 हिंदी साहित्य का रीतिकाल_____190

13.1 प्रस्तावना
13.2 अध्ययन के उद्देश्य
13.3 रीतिकाल का अर्थ एवं स्वरुप
13.4 नामकरण एवं काल सीमा
13.5 रीतिकाल की परिस्थितियाँ
13.6 रीतिकाल की सामान्य प्रवृत्तियां
13.7 सार - संक्षेप
13.8 मुख्य शब्द
13.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
13.11 अभ्यास प्रश्न

इकाई -14 रीतिबद्ध काव्यधारा_____208

14.1 प्रस्तावना
14.2 अध्ययन के उद्देश्य
14.3 रीतिबद्ध काव्यधारा की अवधारणा
14.4 रीतिबद्ध काव्यधारा की विशेषताएं
14.5 रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि
14.6 सार - संक्षेप
14.7 मुख्य शब्द

14.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
14.9 अभ्यास प्रश्न
14.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

इकाई -15 रीतिसिद्ध काव्यधारा_____217

15.1 प्रस्तावना
15.2 अध्ययन के उद्देश्य
15.3 रीतिसिद्ध काव्यधारा की अवधारणा
15.4 रीतिसिद्ध काव्यधारा की विशेषताएं
15.5 रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि
15.6 सार - संक्षेप
15.7 मुख्य शब्द
15.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
15.10 अभ्यास प्रश्न

इकाई -16 रीतिमुक्त काव्यधारा_____223

16.1 प्रस्तावना
16.2 अध्ययन के उद्देश्य
16.3 रीतिमुक्त काव्यधारा की अवधारणा
16.4 रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताएं
16.5 रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि
16.6 सार - संक्षेप
16.7 मुख्य शब्द
16.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
16.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
16.10 अभ्यास प्रश्न

ब्लॉक - I

इकाई -1

इतिहास, दर्शन और साहित्येतिहास

1.1 प्रस्तावना
1.2 अध्ययन के उद्देश्य
1.3 साहित्येतिहास लेखन के विविध पक्ष
1.4 साहित्येतिहास लेखन की पद्धतियाँ
1.5 साहित्येतिहास लेखन की परंपरा
1.6 साहित्येतिहास पुनर्लेखन की समस्याएं
1.7 सार - संक्षेप
1.8 मुख्य शब्द
1.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.11 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में 'इतिहास, दर्शन और साहित्येतिहास' के बीच के गहरे संबंधों का अध्ययन किया गया है। इसमें इतिहास के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ साहित्य के विकास और समाज पर उसके प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, साहित्येतिहास की लेखन प्रक्रिया, जिसमें सामग्री-संकलन, काल-विभाजन और साहित्यिक प्रवृत्तियों का मूल्यांकन शामिल है, पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय का उद्देश्य साहित्य और समाज के परस्पर संबंधों को समझते हुए साहित्यिक विकास की प्रक्रिया का सम्यक विश्लेषण प्रस्तुत करना है।

1.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- साहित्येतिहास के विकासक्रम, उसमें आने वाली विभिन्न प्रवृत्तियों और उनके सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रभावों का विश्लेषण करना।
- साहित्य और इतिहास के बीच के गहरे संबंधों को समझना, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि कैसे ऐतिहासिक घटनाएं साहित्य पर प्रभाव डालती हैं और साहित्य किस प्रकार इतिहास को समृद्ध करता है।
- साहित्येतिहास लेखन की प्रक्रिया को समझना, जिसमें सामग्री संकलन, काल-विभाजन और साहित्यिक रचनाओं के मूल्यांकन की विधियाँ शामिल हैं।
- साहित्यिक रचनाओं का विश्लेषण और मूल्यांकन करने की योग्यता का विकास करना, जिससे वे साहित्यिक रचनाओं की गहराई को समझ सकें।

1.3 साहित्येतिहास लेखन के विविध पक्ष

किसी भी साहित्य का इतिहास लिखते समय इतिहासकार को कई चरणों से गुजरना पड़ता है। इसमें स्रोत सामगी का संकलन प्रमुख है। तत्पश्चात वह विशिष्ट रचनाकारों और रचनाओं की पहचान करता है। परंपरा के वैज्ञानिक अनुशीलन के उपरांत काल-विभाजन व नामकरण की समस्या पर विचार करता है। इस हेतु वह विभिन्न प्रवृत्तियों का अवलोकन व विश्लेषण करता है। तदुपरांत वह युगविशेष और प्रवृत्ति के अंतर्संबंध का विश्लेषण करते हुए वर्तमान संदर्भ में उनका मूल्यांकन करता है। इस प्रकार उसे निम्न चरणों से गुजरना होता है -

- **सामग्री-संकलन -** किसी भी साहित्य का इतिहास लिखने के लिए सामग्री-संकलन अति आवश्यक है। यह इतिहास लेखन की पूर्व पीठिका के रूप में

काम करता है। तथ्य आधारभूत स्रोत के रूप में काम करते हैं। तथ्यों की खोज के क्रम में वह पुराने साहित्य और साहित्यकार संबंधी अनुसंधानों, कृतियों के प्रामाणिक और सुसंगठित संस्करणों, आकार, ग्रंथ सूची, शिष्ट और लोकसाहित्य की समुचित विवरणी और सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के प्रामाणित इतिहास-ग्रंथों से गुजरता है।

- **काल-विभाजन और नामकरण -** इतिहास लेखक पूरे इतिहास को विभिन्न कालों और युगों में विभक्त करके काल-विभाजन करता है। यद्यपि काल का प्रवाह अविच्छिन्न है तथा भूत, वर्तमान व भविष्य एक-दूसरे में अनुस्यूत रहते हैं, किंतु काल-विभाजन से तत्कालीन साहित्य व समाज की दशा व दिशा निर्धारित की जा सकती है। काल-विभाजन का लक्ष्य अंततः इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में उसकी घटनाओं एवं प्रवृत्तियों के विकासक्रम को स्पष्ट करना होता है। साहित्य की अंतर्निहित चेतना के क्रमिक विकास, उसकी परंपराओं के उत्थान-पतन एवं उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों के दिशा-परिवर्तन आदि के कालक्रम को स्पष्ट करना ही काल-विभाजन का लक्ष्य होता है।

साहित्य का काल-विभाजन करते समय साहित्यिक आधार पर किया काल-विभाजन सर्वश्रेष्ठ होता है। इस संदर्भ में आचार्य नलिन विलोचन शर्मा का कथन दृष्टव्य है "यदि हम मानते हैं कि मनुष्य के राजनीतिक, सामाजिक, बौद्धिक या भाषा-वैज्ञानिक विकास से संयुक्त रहते हुए साहित्य का स्वतंत्र विकास होता है और दूसरा पहले का निष्क्रिय प्रतिबिंब नहीं है, तो हम अनिवार्यतः इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि साहित्यिक युग विशुद्ध साहित्यिक मानदंड के सहारे निर्धारित होने चाहिए।"3

इसी प्रकार डॉ. मैनेजर पांडेय ने कहा है- "साहित्य का इतिहास वर्तमान की चेतना के परिप्रेक्ष्य में ही अतीत की सार्थकता की व्याख्या करके वर्तमान के लिए उसे उपयोगी और प्रासंगिक बनाता है।"4

अतः काल-विभाजन और नामकरण यथासाध्य साहित्यिक आधार पर किया जाना चाहिए, यद्यपि यह साहित्यिक आधार परिवेशगत परिस्थितियों से पूर्णतः असंयुक्त नहीं हो सकता।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न: 1. किसी भी साहित्य का इतिहास लिखते समय प्रथम चरण में इतिहासकार को _____ का संकलन करना आवश्यक होता है।

प्रश्न: 2. आचार्य नलिन विलोचन शर्मा के अनुसार साहित्य का काल-विभाजन _____ मानदंड के सहारे निर्धारित होना चाहिए।

1.4 साहित्येतिहास लेखन की पद्धतियाँ

"साहित्य सतत प्रवाहमना है, तथा साहित्येतिहास लेखन भी इससे विरल नहीं है। यह एक विकासशील विधा है। प्रत्येक चीज़ के विकास को परखने के लिए सिद्धांत एवं पद्धतियां अलग होती हैं। इसी प्रकार, साहित्य के इतिहास के लेखन की पद्धतियां भी समय-समय पर बदलती रही हैं। कभी वर्णमाला को आधार बनाया गया, तो कभी कालानुक्रम को आधार रखा गया। किसी इतिहासकार ने विधेयवादी पद्धति अपनाई, तो किसी ने वैज्ञानिक तरीके से वर्गीकरण किया। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक पद्धति में अपने गुण-दोष रहे हैं, इस कारण यह कहना अत्युक्ति नहीं कि कोई भी पद्धति निर्दोष नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण बात

यह है कि इतिहासकार में सही ऐतिहासिक बोध अंतर्दृष्टि और विवेक का होना आवश्यक है।"

साहित्येतिहास लेखन की विभिन्न पद्धतियां निम्न हैं -

- **वर्णानुक्रमी पद्धति** - इस पद्धति में कृतिकार का परिचय वर्णमाला के अक्षरक्रम से दिया जाता है। प्रमुखतः गार्सा-द-तासी तथा शिवसिंह सेंगर ने इस पद्धति को अपनाया है। इस प्रकार लिखने में अपेक्षित सूचनाओं का अभाव रहता है। उक्त लेखक रचनाओं एवं रचनाकारों के समय के बारे में निश्चित नहीं थे। अतः कालक्रम के अनुसार कृतिकारों को प्रस्तुत नहीं कर सके। इस प्रणाली को पद्धति न कहकर 'कोरा-निर्माण' कहना अधिक उचित होगा। वर्तमान में कोई भी लेखक इस पद्धति से इतिहास-लेखन नहीं करता है।
- **कालानुक्रमी पद्धति** - इस पद्धति में ऐतिहासिक तिथिक्रम के आधार पर निर्धारण होता है। इसमें सबसे बडी समस्या रचनाकार के जन्म तथा रचना को लेकर होती है। रचनाकार की जन्मतिथि को आधार माना जाए या रचनातिथि को माना जाए यह विवाद उत्पन्न करता है। हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन में डॉ. ग्रियर्सन और मिश्रबंधुओं ने यही पद्धति अपनाई है। उर्दू साहित्य में मुहम्मद हुसैन आज़ाद और अंग्रेजी में डॉ. जलसन ने यही पद्धति अपनाई। यहां प्रश्न यह है कि क्या केवल कालक्रम ही इतिहास निर्धारक हो सकता है। साहित्येतिहास का उद्देश्य कुछ प्रमुख रचनाकारों का परिचय मात्र नहीं, वरन तत्कालीन परिवेश को सामने लाना भी है, जिस कारण वह साहित्य रचित हुआ। जब तक युग की पृष्ठभूमि सामने नहीं आएगी, तब तक सही अर्थों में इतिहास लेखन संभव नहीं है। वृत्तसंग्रह मूलक प्रणाली, चाहे वह ऐतिहासिक तिथिक्रम से ही क्यों न नियोजित हो, साहित्य के इतिहास के इस व्यापक उद्देश्य की पूर्ति में समर्थ नहीं हो सकती। अतः यह पद्धति भी उत्तनी उपयोगी नहीं है।

- **वैज्ञानिक पद्धति** - वैज्ञानिक पद्धति, कालक्रमिक पद्धति से बिल्कुल भिन्न है। इसमें तथ्यों की प्रमुखता रहती है। यह प्रणाली मुख्यतः शोध पर आधारित है। इसमें शोध द्वारा वैज्ञानिक तरीके से तथ्य प्रस्तुत होते हैं। किंतु मात्र तथ्य संकलन इतिहास नहीं है। इतिहास तथ्य और व्याख्या का समन्वित रूप है। इस संदर्भ में नामवर सिंह का कथन उल्लेखनीय है- "मानव इतिहास ही प्रवाहमय धारा में धारा और किनारा सब कुछ मनुष्य ही है, तटस्थ कोई नहीं। जो विरोधी धाराओं के संघर्ष से घबराकर निष्पक्षता में विश्राम करना चाहता है, वह प्रवाह-पतित अनजाने ही इतिहास-विरोधी धारा में जा पड़ता है। अतः यह प्रणाली भी पूर्ण नहीं है।
- **विधेयवादी पद्धति -** इस प्रणाली में असंबद्ध तथ्य एक होते हैं। इसके अनुसार साहित्य की व्याख्या भौतिक विज्ञान की प्रणालियों से, कार्य-कारण मीमांसा के आधार पर करनी चाहिए। इस पद्धति के जनक तौसा (Tausa) हैं। उन्होंने तीन शब्दों में इसे सूत्रबद्ध किया जाति, वातावरण एवं क्षण। उनका मत है कि किसी भी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उससे संबंधित जातीय परंपराओं, राष्ट्रीय और सामाजिक वातावरण एवं सामाजिक परिस्थितियों को जानना आवश्यक है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यही पद्धति अपनाई है। यह पद्धति अन्य पद्धतियों से श्रेष्ठ तो है, किंतु इसमें भी एकांगी दृष्टि ही है। वस्तुतः साहित्य, समाज का दर्पण तो है किंतु पूर्ण आधार नहीं, इसके लिए परंपरा का भी योगदान होता है। इस तरह साहित्य निर्माण में समाज और परंपरा का भी योगदान होता है और साहित्य निर्माण में ये दोनों आवश्यक हैं। अस्तु यह भी पूर्णतः शुद्ध पद्धति नहीं है।
- **समाजशास्त्रीय पद्धति -** समाजशास्त्रीय पद्धति कार्ल मार्क्स के 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' के सिद्धांत पर आधारित है। समाज का द्वंद्व भी साहित्य से अछूता नहीं, अतः साहित्य भी एक सामाजिक सृष्टि है तथा इसमें भी दोनों प्रकार की भावनाएं मिलती हैं। इतिहासकार का कर्तव्य

साहित्य का विश्लेषण कर उसे समाज की कसौटी पर कसना है। यह प्रणाली समाज व व्यक्ति की असंगतियों एवं अंतर्विरोधों को परखकर उन्हें उजागर करने का प्रयास करती है। यह पद्धति साहित्य मूल्यांकन की दृष्टि से उपादेय भी है।

वस्तुतः कोई भी पद्धति मूल्यांकन की दृष्टि से पूर्णतः उपयुक्त नहीं है। इस कारण दो-तीन पद्धतियों को सम्मिलित कर उनका मूल्यांकन उचित प्रतीत होता है। साहित्येतिहास के समग्र और संतुलित होने में इतिहासकार के इतिहास बोध और दृष्टिकोण का विशेष महत्व है। साहित्य का इतिहास लिखते समय ऐतिहासिक शोध और समाजशास्त्रीय सिद्धांत के साथ-साथ ही लेखक का इतिहास बोध, अंतर्दृष्टि तथा विवेक सबसे महत्वपूर्ण है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. वर्णानुक्रमी पद्धति में कृतिकार का परिचय _____ के क्रम से दिया जाता है।
2. समाजशास्त्रीय पद्धति _____ के 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' के सिद्धांत पर आधारित है।

1.5 साहित्येतिहास लेखन की परंपरा

हिंदी साहित्येतिहास लेखन के लिए रुझान उन्नीसवीं शती के आरंभ से हुआ। यद्यपि इससे पूर्व भी यदा-कदा रचनाकारों के जीवनवृत्त व कृतित्व का परिचय देने की परंपरा रही, किंतु इसे पूरी तरह इतिहास-लेखन की संज्ञा नहीं दी गई। चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ वैष्णवन की वार्ता भक्तमाल, कविमाला, कालिदास-हजारा आदि ऐसे ही ग्रंथ हैं।

यदि हिंदी साहित्य पर दृष्टि डालें तो हिंदी साहित्य का सबसे पहला इतिहास एक फ्रांसीसी विद्वान गार्सा द तासी ने 'इस्त्वार द ला लिटरेत्युर ऐंदुई ऐंदुस्तानी' नामक ग्रंथ लिखा था। उसका पहला भाग सन् 1839 में और दूसरा भाग सन् 1847 में छपा था। इसमें अंग्रेज़ी वर्णक्रम में लगभग सत्तर कवियों और कवयित्रियों का विवरण है। किंतु इसमें काल-विभाजन, युगीन-प्रवृत्तियों और परंपरा के विवेचन का कोई प्रयास नहीं किया गया है। अतः इसे 'इतिहास' की अपेक्षा 'वृत्त संग्रह' कहना अधिक संगत रहेगा।

इसके पश्चात जो महत्वपूर्ण ग्रंथ निकला वह शिवसिंह सेंगर का 'शिवसिंह सरोज' है। इसका रचनाकाल 1883 है। इसमें कवियों की संख्या में वृद्धि हुई। इसमें लगभग एक हज़ार कवियों की कविताएं सम्मिलित हैं। मूलतः यह एक काव्य संग्रह है, किंतु इसमें अनेक कवि व कविताओं को इकट्ठा करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। बाद के कवियों के लिए यह स्रोत का काम करता है। परंतु यह दोनों संग्रह जीवनी रूप में ही रहे। इनमें विभिन्न कालों का विवेचन नहीं था।

जार्ज ग्रियर्सन ने पहली बार द मार्डन वर्नाक्यूलन लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान में कवियों व लेखकों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण किया। साथ ही साथ उनकी प्रवृत्तियों को उद्घाटित करने का प्रयास किया। ग्रियर्सन ने तत्कालीन युग के सांस्कृतिक परिवेश और प्रेरणास्रोतों के उद्घाटन का भी प्रयास किसा। वस्तुतः इसे हिंदी साहित्य का पहला इतिहास ग्रंथ कहा जा सकता है। उन्होंने पथप्रदर्शक की भूमिका का निवर्हन किया।

क्रमबद्ध इतिहास के रूप में सबसे पहला ग्रंथ मिश्रबंधु विनोद (तीन-भाग) सं 1900 में प्रकाशित हुआ। इसमें काल-विभाजन के साथ नागरी प्रचारिणी सभा की खोज के फलों का पूर्ण समावेश कर दिया गया। इसमें लगभग पांच हज़ार कवियों का उल्लेख है। यह ग्रंथ सूचनाओं का अपार भंडार है, जो आगामी साहित्यकारों के लिए बहुत उपयोगी रहा। हिंदी का सर्वाधिक व्यवस्थित इतिहास

आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित "हिंदी साहित्य का इतिहास" है। उन्होंने युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्य के विकास-क्रम की व्याख्या करने का प्रयास किया है। शुक्ल जी ने जनता की चित्तवृत्ति के साथ-साथ साहित्य का संबंध जोड़ते हुए उसके क्रमिक विकास और परिवर्तन का आलेख प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त उसमें विशेष कवियों के काव्य-गुणों व उनके महत्व का भी सोदाहरण विवेचन किया है।

श्यामसुंदर दास का हिंदी भाषा और साहित्य भी उल्लेखनीय है। इसमें उन्होंने कवियों के विकास का कलाओं के विकास के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन प्रस्तुत किया है, साथ ही ऐतिहासिक परिस्थितियों पर विशेष ध्यान दिया है। जहां आचार्य शुक्ल ने युगीन परिस्थितियों पर बल दिया, वहीं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परंपरा को इतिहास-लेखन का आधार बनाया। द्विवेदी जी ने परंपरापरक दृष्टिकोण को स्थापित करके हिंदी साहित्य के अध्येताओं के लिए एक व्यापक और संतुलित इतिहास-दर्शन की भूमिका तैयार की।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद अनेक इतिहास लेखकों का पदार्पण हुआ। इनमें रामकुमार वर्मा, धीरेंद्र वर्मा, डॉ. नगेंद्र, रमाशंकर शुक्ल, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. रामबहोरी शुक्ल का नाम उल्लेखनीय है। राम विलास शर्मा की इतिहास दृष्टि उक्त लेखकों से अलग रही है। वह मार्क्सवादी धारा के कवि रहे हैं। उन्होंने हिंदी भाषा के गठन, निर्माण और विकास का प्रामाणिक विवेचन किया है। हिंदी भाषा और साहित्य के जातीय स्वरूप की पहचान और विशेषताओं के विकास का प्रश्न उनके इतिहास लेखन में प्रमुख रूप से उभरकर सामने आया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हिंदी साहित्य का एक वृहत इतिहास सघन भागों में प्रकाशित हुआ।

अस्तु इतिहास लेखन बहुत लोकप्रिय नहीं रहा, तथापि कई लेखकों ने इस दिशा में गंभीर प्रयास किए। जहां शुक्ल जी ने युगीन परिस्थितियों पर बल दिया, वहीं द्विवेदी जी ने परंपरा पर अपना मूल्यांकन किया। किंतु दोनों ही

पूरक रहे। भविष्य के इतिहास लेखक इसका उपयोग कर संतुलित इतिहास लिख सकते हैं। साहित्य के इतिहास में नामों और तिथियों की अपेक्षा प्रवृत्तियों और परिस्थितियों का अध्ययन अधिक आवश्यक है, क्योंकि उनके द्वारा ही विकासक्रम के सोपानों और स्तरों को सुगमता से समझा जा सकता है।

1.6 साहित्येतिहास पुनर्लेखन की समस्याएं

हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन के लिए अनेक प्रयास किए गए। इसके लिए लेखकों ने अनेक पद्धतियों को अपनाया। किंतु यह भी विचारणीय विषय है कि हिंदी साहित्य का इतिहास लिखते समय किन-किन साहित्यकारों और साहित्य पर विचार किया जाए। एक प्रश्न यह भी है कि अपभ्रंश व हिंदी की समस्या का समाधान कैसे किया जाए। इस संदर्भ में निम्न बिंदुओं पर विचार किया जाना आवश्यक है-

- **रचनाओं और रचनाकारों का समावेश -** साहित्येतिहास लेखक के सामने अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं। सर्वप्रथम, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इसमें किस प्रकार के साहित्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। साहित्य को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ विद्वान रसात्मक और ललित साहित्य का ही विवेचन और मूल्यांकन करना चाहते हैं, तो कुछ विद्वान ज्ञानात्मक साहित्य; जैसे आयुर्वेद, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल की भी चर्चा करने के पक्ष में हैं। साहित्य के किस पक्ष को लिया जाए, यह इस बात पर निर्भर है कि साहित्य के इतिहास-लेखन का प्रयोजन क्या है? वस्तुतः रसात्मक एवं ज्ञानात्मक दोनों प्रकार का साहित्य आवश्यक है।

यद्यपि प्रधानता ललित साहित्य की ही होगी पर इसके अतिरिक्त उन कृतियों को भी स्थान दिया जाना चाहिए जो अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य और भाषा-शैली के विकास के निरूपण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। वस्तुतः आदिकाल की नाथपंथी रचनाएं अथवा मध्ययुगीय वार्तागंथ शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आते। किंतु इन्हें सम्मिलित किया गया, कारण यही था कि इसमें भाषा के विकास की अवस्थाएं प्रकट की जाती हैं। स्पष्ट है कि भाषा और साहित्य के विकास को निरूपित करने वाले साहित्य-ग्रंथ भी इतिहास-लेखन के क्रम में सम्मिलित होने चाहिए।

- हिंदी साहित्य के आरंभ का प्रश्न यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि साहित्य का आरंभ कब से स्वीकार किया जाए। यह सवाल साहित्य इतिहास लेखक के समक्ष आता है कि अपभ्रंश साहित्य को हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में सम्मिलित किया जाए अथवा नहीं। यदि अपभ्रंश को स्वीकार करते हैं तो हिंदी साहित्येतिहास का आरंभ 7वीं 8वीं शताब्दी से माना जाएगा और यदि अपभ्रंश की परवर्ती परंपरा को स्वीकारते हैं तो दसवीं शताब्दी हिंदी साहित्य की प्रस्थान बिंदु होगी। 7वीं शती मानने के पक्षकार विद्वान हैं- चंद्रघर शर्मा गुलेरी और राहुल सांकृत्यायन, जो अपभ्रंश साहित्य को 'पुरानी हिंदी स्वीकार करते हैं। दूसरी ओर, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 10वीं शती से हिंदी साहित्य का आरंभ मानते हैं। यह मत अधिक लोकप्रिय हुआ है।

- अन्य समस्याएं - उक्त के अतिरिक्त इतिहास-लेखकों को अन्य अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इतिहासकार को 'हिंदी' शब्द की व्यापकता, हिंदी साहित्य के इतिहास में गौण रचनाकारों का योगदान एवं

काल-विभाजन एवं नामकरण जैसी समस्याओं का भी सामना करना होता है। 'हिंदी' शब्द को व्यापक रूप से ही व्याख्यायित करना उचित रहता है।

1.7 सार संक्षेप

इस इकाई में 'इतिहास, दर्शन और साहित्येतिहास' के आपसी संबंधों को समझाया गया है। इसमें साहित्य के विकास और समाज पर उसके प्रभाव को दिखाने के लिए साहित्येतिहास की प्रक्रियाओं जैसे सामग्री संकलन, काल विभाजन, और साहित्यिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण का वर्णन किया गया है। साहित्येतिहास लिखने के लिए विभिन्न पद्धतियों का उपयोग होता है, जैसे कालानुक्रम और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण। हिंदी साहित्य का इतिहास उन्नीसवीं शताब्दी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों ने लिखा, जिन्होंने साहित्य को समाज और संस्कृति के संदर्भ में देखने की दिशा दी।

1.8 मुख्य शब्द

- **साहित्येतिहास**: साहित्य का इतिहास; वह अनुशासन जो विभिन्न कालों में साहित्य के विकास और उसके प्रभाव का अध्ययन करता है।
- **पद्धति**: किसी कार्य या अध्ययन को व्यवस्थित रूप से करने की विधि; साहित्येतिहास में विभिन्न तरीकों का प्रयोग, जैसे - काल विभाजन, प्रवृत्ति-आधारित विश्लेषण आदि।
- **हिंदी साहित्य**: हिंदी भाषा में लिखा गया समृद्ध साहित्य, जिसमें गद्य, पद्य, नाटक, निबंध आदि विधाएँ शामिल हैं।
- **इतिहासलेखन**: ऐतिहासिक घटनाओं, व्यक्तित्वों और प्रवृत्तियों को लिखित रूप में संजोना; साहित्य के क्षेत्र में यह लेखन साहित्यिक कालखंडों और कृतियों का वर्णन करता है।

- **परंपरा**: पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले रीति-रिवाज और विचार; साहित्य में रचनात्मकता की निरंतरता और प्राचीन से आधुनिक काल तक की काव्यात्मक विरासत।
- **दृष्टिकोण**: किसी विषय के प्रति विचारधारा; साहित्येतिहास के अध्ययन में विभिन्न दृष्टिकोण अपनाए जाते हैं, जैसे - समाजशास्त्रीय, सांस्कृतिक, और भाषिक दृष्टिकोण।
- **काव्य-शैली**: साहित्य में विशिष्ट प्रकार की लेखन शैली, जो किसी कवि की अभिव्यक्ति के प्रकार और उसकी विशेषताओं को दर्शाती है।
- **आलोचना**: साहित्यिक कृतियों का मूल्यांकन और विवेचन; आलोचक कृति की विशेषताओं, प्रभाव और साहित्यिक महत्व का विश्लेषण करते हैं।
- **ऐतिहासिक विकास**: साहित्य के इतिहास में बदलाव की प्रक्रिया; साहित्य के विभिन्न कालों में बदलते विषय, शैली और उद्देश्य।
- **प्रमुख प्रवर्तक**: साहित्य में नए विचारों और विधाओं को प्रोत्साहन देने वाले प्रमुख व्यक्ति या रचनाकार; जैसे किसी विशेष युग के महान कवि या लेखक।

1.9 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. स्रोत सामग्री,

उत्तर: 2. साहित्यिक

उत्तर: 3. वर्णमाला

उत्तर: 4. कार्ल मार्क्स

1.10 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास - डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2010 (संशोधित संस्करण)

2. हिंदी साहित्य और समकालीन संदर्भ - डॉ. रमेश चंद्र शाह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

3. हिंदी साहित्य के आयाम - डॉ. शंभुनाथ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015

4. हिंदी का समाजशास्त्र - डॉ. अशोक कुमार पांडेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018

5. भारतीय साहित्य का पुनर्पाठ - डॉ. प्रभात त्रिपाठी, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2021

1.11 अभ्यास प्रश्न

1. साहित्येतिहास लेखन के उद्देश्य और इसकी पद्धति का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. हिंदी साहित्य के ऐतिहासिक विकास में प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिए।
3. साहित्येतिहास में परंपरा और आधुनिकता के बीच संबंध को स्पष्ट कीजिए।
4. हिंदी साहित्य के इतिहास में आलोचना और मूल्यांकन की भूमिका पर चर्चा कीजिए।
5. साहित्येतिहास के अध्ययन में विभिन्न दृष्टिकोणों का महत्व और उनकी सीमाएँ बताइए।

इकाई - 2

हिंदी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन एवं नामकरण

2.1 प्रस्तावना

2.2 अध्ययन के उद्देश्य

2.3 काल विभाजन एवं नामकरण की आवश्यकता

2.4 काल विभाजन एवं नामकरण का आधार

2.5 हिंदी साहित्य में काल विभाजन की समस्या

2.6 काल विभाजन के प्रयास

2.7 विभिन्न कालों में नामकरण सम्बन्धी विवाद

2.8 सार संक्षेप

2.9 मुख्य शब्द

2.10 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.12 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

साहित्य का अध्ययन व्यवस्थित रूप से करने के लिए काल विभाजन जरूरी है, ताकि हम साहित्य की प्रवृत्तियों, परिवर्तनों और प्रभावों को समझ सकें। काल विभाजन से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य की चेतना और परंपराएं किस प्रकार समय के साथ विकसित हुईं। हिंदी साहित्य के आरंभ को लेकर विद्वानों के बीच मतभेद हैं। कुछ इसे सातवीं शताब्दी से मानते हैं, तो कुछ दसवीं शताब्दी से। अपभ्रंश और हिंदी के बीच के संबंधों को लेकर भी विवाद है, लेकिन अधिकांश विद्वान इसे अलग-अलग भाषाएं मानते हैं, हालांकि अपभ्रंश हिंदी से जुड़ा हुआ है।

हिंदी साहित्य के काल विभाजन में कई दृष्टिकोण अपनाए गए हैं, जैसे जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबंधु और रामचंद्र शुक्ल के विभाजन। इनमें से मिश्रबंधु और शुक्ल के काल विभाजन को स्वीकार किया गया, लेकिन कुछ दोष भी हैं।

2.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे :

- साहित्य के विकास को समझने के लिए काल विभाजन और नामकरण की आवश्यकता।
- साहित्य में काल विभाजन के प्रभाव और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का महत्व।
- हिंदी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन से जुड़ी समस्याओं और विभिन्न दृष्टिकोणों की पहचान।
- हिंदी साहित्य के विविध कालखंडों के आधार और उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों का अवलोकन।
- काल विभाजन के विभिन्न प्रयासों और उनसे जुड़े मतों का विश्लेषण।

2.3 काल विभाजन एवं नामकरण की आवश्यकता

इतिहास को स्पष्ट रूप से समझने के लिए काल विभाजन और नामकरण आवश्यक है। साहित्येतिहास भी इसका अपवाद नहीं है। किसी भी चीज का व्यवस्थित अध्ययनकरने के लिए यह आवश्यक है। इसके बिना दिशाहीनता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। वस्तुतः काल - विभाजन से साहित्य के विकास की दिशा, विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों, विभिन्न परिवर्तनों और मोड़ों का पता चलता है।'

काल-विभाजन एवं नामकरण करने की आवश्यकता इस कारण से भी है, क्योंकि साहित्य सतत प्रवाहमान है तथा प्रत्येक समय की परिस्थितियां बदलती रहती हैं, अतः उन परिस्थितियों के अनुसार नामकरण आवश्यक है। इसी क्रम में उस बदलाव को काल में विभक्त किया जाना आवश्यक होता है।

2.4 काल विभाजन एवं नामकरण का आधार

साहित्य की अंतर्निहित चेतना के क्रमिक विकास, परंपराओं के उत्थान-पतन और विभिन्न प्रवृत्तियों के उदय को स्पष्ट करना ही काल-विभाजन और नामकरण का उद्देश्य है। साहित्य समाज का ही राष्ट्रांकन है। अतः समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का साहित्य में आना स्वाभाविक है। साहित्येतिहास का काल-विभाजन एवं नामकरण भी इससे अप्रभावित नहीं रहता है। किंतु यह कहना अत्युक्ति है कि केवल समाज ही साहित्य का आधार है, क्योंकि कवि की कल्पना और प्रतिभा भी कोई चीज़ है । साहित्य अथवा साहित्यकार किसी का अनुचर नहीं है, अतः साहित्य की मूल चेतना अपनी अक्षुण्णता बनाए रहती है। अस्तु साहित्य के इतिहास का युग विभाजन और नामकरण का आधार साहित्यिक प्रवृत्ति और चेतना ही होनी चाहिए।

काल-विभाजन एवं नामकरण हेतु एक निश्चित आधार नहीं है। कभी शासक और शासनकाल को आधार बनाया जाता है, तो कभी किसी साहित्यकार, राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा साहित्यिक प्रवृत्ति को काल-विभाजन और नामकरण का आधार बनाया जाता है। किंतु यदि हम साहित्य के काल - विभाजन की चर्चा करते हैं तो साहित्यिक प्रवृत्ति या मूल साहित्यिक चेतना ही इसका आधार होनी चाहिए। इसमें विवाद नहीं होता है। इसके लिए आवश्यक है कि किसी एक साहित्यिक प्रवृत्ति की प्रधानता हो, यथा– भक्तिकाल, जिसमें भक्ति की प्रधानता रही, अतः अन्य कोई नाम उपयुक्त ही नहीं रहा । कभी किसी राष्ट्रीय, सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव पूरे कालखंड साहित्य पर पड़ता है; जैसे पुनर्जागरण, कभी किसी

व्यक्ति विशेष (साहित्यिक या राजनीतिक) का प्रभाव रहता है; जैसे भारतेंदु द्विवेदी युग आदि । अतः काल-विभाजन और नामकरण करते समय कई आधार रहते हैं। इसमें एकरूपता का आग्रह ठीक नहीं है। यह विवेकसंगत एवं तर्कसंगत होना चाहिए । उपयुक्त काल- ल - विभाजन वही है जो साहित्य की परंपरा को सही रूप में व्यक्त कर सके। युगों की सीमा का निर्धारण मूल प्रवृत्तियों के शुरू होने और अस्त होने आधारित होना चाहिए। जहां से साहित्य की मूल चेतना में परिवर्तन दिखाई दे, वहीं से नए काल का प्रारंभ माना जाएगा ।

2.5 हिंदी साहित्य में काल विभाजन की समस्या

हिंदी साहित्य में काल-विभाजन के समय अनेक समस्याएं उपस्थित होती हैं । इनमें | सर्वप्रथम यह प्रश्न आता है कि हिंदी साहित्य का आरंभ कब से माना जाए। इस संबंध में सबसे पहला प्रयास करने का श्रेय जार्ज ग्रियर्सन को है । पर जैसा कि उन्होंने स्वयं अपने ग्रंथ की भूमिका में स्वीकार किया है, उनके सामने अनेक ऐसी कठिनाइयां थीं जिससे वे कालक्रम एवं काल-विभाजन के निर्वाह में पूर्णतः सफल नहीं हो सके। वे लिखते हैं, "सामग्री को यथासंभव कालक्रमानुसार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह सर्वत्र सरल नहीं रहा है, और कतिपय स्थलों पर तो यह असंभव सिद्ध हुआ है । अतएव वे कवि जिनका समय में किसी भी प्रकार स्थिर नहीं कर सका अंतिम अध्याय में वर्णानुक्रम से एक साथ दे दिए गए हैं।"

जार्ज ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं शती से माना है। परंतु दूसरे इतिहासकार इससे सहमत नहीं हैं। आचार्य शुक्ल का मत है कि पुरानी हिंदी का जन्म | तो सातवीं शती के आस-पास हो गया था तथा उसमें सिद्धों, जैनियों एवं नाथपंथियों | ने काव्य भी लिखा था, पर उनके काव्य में अपने-अपने धर्म-संप्रदाय की शिक्षाएं दी गई हैं । उनमें काव्यगुणों का अभाव है। इसलिए आचार्य शुक्ल इन्हें मात्र 'सांप्रदायिक शिक्षा' मानकर इन्हें काव्य के रूप में स्वीकार नहीं

करते हैं। इस प्रकार, वे दसवीं शताब्दी से ही काल-विभाजन स्वीकार करते हैं। इस मत के समर्थकों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी है। डॉ. रामकुमार वर्मा तथा डॉ. नगेंद्र सातवीं शती के समर्थक हैं ।

यह विवाद का विषय है कि हिंदी भाषा और अपभ्रंश का पारस्परिक संबंध क्या है । भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि प्राकृत भाषा से अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय भाषाओं जिनमें हिंदी प्रमुख है, का विकास हुआ। इस प्रकार हिंदी का जन्म अपभ्रंश से हुआ। परंतु दूसरा मत है कि अपभ्रंश हिंदी का ही एक रूप है। उदाहरण के लिए, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपभ्रंश को 'प्राकृताभास हिंदी माना है, जबकि राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश को पुरानी हिंदी की संज्ञा देते हुए अपभ्रंश के सारे कवियों को हिंदी के कवियों के रूप में स्वीकार किया है। हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं शती से मानने पर सरहपाद ही हिंदी के पहले कवि सिद्ध होते हैं। इस प्रकार विद्वानों के दो वर्ग हैं।

1. एक वर्ग में वे विद्वान हैं जो हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं शती से मानते हुए हिंदी और अपभ्रंश को एक ही मानते हैं।
2. दूसरे वर्ग में वे विद्वान हैं जो अपभ्रंश को हिंदी से अलग मानते हुए, हिंदी का आरंभ दसवीं शती से मानते हैं।

ध्यातव्य है कि वर्तमान में हिंदी और अपभ्रंश भाषा के विषय में निश्चित हो चुका है कि ये दोनों भाषाएं एक नहीं हैं। यद्यपि अपभ्रंश हिंदी सहित उत्तर भारत की कई भाषाओं की जननी है, किंतु अधिकांश विद्वानों का मत है कि दोनों अलग-अलग भाषा हैं। दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक का साहित्य अपभ्रंश से भिन्न भाषा का साहित्य है । वस्तुतः इसमें हिंदी की आधुनिक बोलियों के पूर्वरूप की झलक मिल जाती है। इसी कारण हिंदी साहित्य के इतिहास लेखक दसवीं शताब्दी से हिंदी साहित्य का आरंभ स्वीकार करते हैं।

2.6 काल विभाजन के प्रयास

इस दिशा में काल- विभाजन का प्रथम प्रयास जार्ज ग्रियर्सन को जाता है । तत्पश्चात मिश्रबंधुओं, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा गणपति चंद्र गुप्त ने प्रयास किया। सर्वप्रथम ग्रियर्सन द्वारा किए गए काल - विभाजन पर दृष्टि डालेंगे -

(1) चारण- काल (2) पंद्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण (3) जायसी की प्रेम कविता (4) ब्रज का कृष्ण - संप्रदाय (5) मुगल दरबार (6) तुलसीदास (7) रीति-काव्य (8) तुलसीदास के अन्य परवर्ती (9) अट्ठारहवीं शताब्दी (10) कंपनी के शासन में हिंदुस्तान (11) महारानी विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान । इस प्रकार, उनका ग्रंथ इन ग्यारह कालखंडों में विभक्त है, जो वस्तुतः युग - विशेष के द्योतक कम हैं, अध्यायों के शीर्षक अधिक हैं। इसके अतिरिक्त कालक्रम का प्रवाह भी इसमें अविच्छिन्न रूप से नहीं चलता; यथा, चारण- काल के बाद एकाएक वे पंद्रहवीं शती में पहुंच जाते हैं, पूरी चौदहवीं शताब्दी को वे इतिहास से निकाल देते हैं । कालों का नामकरण भी किसी एक आधार पर नहीं है। कहीं किसी धार्मिक संप्रदाय को इसका आधार बताया गया है तो कहीं किसी शासक विशेष को और कहीं शताब्दी का ही उल्लेख मात्र है। साथ ही तथ्यों की दृष्टि से इसमें सबसे बड़ी भ्रांति यह है कि सातवीं शती से लेकर तेरहवीं शती तक के समय को इसमें हिंदी साहित्येतिहास का एक युग माना गया है । अस्तु, ग्रियर्सन का यह प्रयास प्रारंभिक प्रयास मात्र है, जिसमें विभिन्न न्यूनताओं, असंगतियों एवं त्रुटियों का होना स्वाभाविक है।

तत्पश्चात, मिश्रबंधुओं ने 1913 ई. में काल विभाजन का नया प्रयास, जो प्रत्येक दृष्टि से ग्रियर्सन के प्रयास से अधिक प्रौढ़ और विकसित कहा जा सकता है, उनका विभाजन निम्नवत है

1. आरंभिक काल	1. पूर्वारंभिक काल (600 - 1343 वि.)

2. उत्तरांभिक काल (1344 - 1444 वि.)

2. माध्यमिक काल 1.पूर्व माध्यमिक काल (1445-1560 वि.)

2. प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561 - 1680 वि.)

3. अलंकृत काल 1. पूर्वालंकृत काल (1681-1790 वि.)

2. उत्तरालंकृत काल (1791-1889 वि.)

4. परिवर्तन काल (1890-1925)

5. वर्तमान काल 1926 वि.सं. से अब तक।

विभाजन को व्यवस्थित करने का प्रयत्न मिश्रबंधुओं ने 'मिश्रबंधु विनोद' में काल - किया है। मिश्रबंधुओं ने व्यवस्था के नाम पर हिंदी के कालखंडों को उपकालखंडों में विभक्त किया है। इससे भ्रम पैदा हो गया है । मध्यकाल को दो भागों में विभक्त करना उचित नहीं है। विभिन्न कालखंडों के नामकरण में भी एक जैसी पद्धति नहीं अपनाई गई है, जहां अन्य नामकरण विकासवादिता के सूचक हैं, वहां 'अलंकार - काल' आंतरिक प्रवृत्ति पर आधारित है। उक्त दोषों के होते हुए भी, मिश्रबंधुओं का प्रयास प्रौढ़ और महत्वपूर्ण है, इसमें कोई संदेह नहीं।

आचार्य शुक्ल ने काल - विभाजन किया, जो निम्न है -

1. आदिकाल (वीरगाथाकाल) संवत् 1050 से 1375
2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) संवत् 1375 से 1800
3. उत्तरमध्यकाल (रीतिकाल) संवत् 1700 से 1900
4. आधुनिक काल (गद्यकाल) संवत् 1900 से 1984

आचार्य शुक्ल के काल - विभाजन और मिश्रबंधुओं के कालविभाजन में कई विशेषताएं सामने आएंगी। इसमें इन्होंने पूर्वारंभिक काल 1050 वि से माना है। इन्होंने भेदोपभेदों की संख्या को दस से घटाकर चार तक सीमित कर दिया। इससे इनके काल-विभाजन में अधिक सरलता, स्पष्टता एवं सुबोधता आ गई। अपनी इस विशेषता के कारण वह आज तक बहुमान्य एवं बहुप्रचलित हैं। शुक्लोत्तर इतिहासकारों में से अनेक ने आचार्य शुक्ल के काल-विभाजन की तीव्र आलोचना तो की तथा उनके दोषों को भी स्पष्ट किया, किंतु उसे संशोधित करके नवीनता लाने में किसी को भी सफलता नहीं मिल सकी। डॉ. रामकुमार वर्मा का काल - विभाजन उल्लेखनीय है

1. संधिकाल (750 -1 000 वि.)
2. चारणकाल (1000 - 1375 वि.)
3. भक्तिकाल (1375 - 1700 वि.)
4. रीतिकाल (1700 - 1900 वि.)
5. आधुनिक काल (1900 से अब तक)

डॉ. वर्मा के काल-विभाजन में प्रारंभिक कालों के नामों में परिवर्तन है । यथा संधिकाल एवं चारणकाल, किंतु ये नाम दोषवृद्धि सूचक अधिक प्रतीत होते हैं। 'संधिकाल' उस भ्रांति का रूप है जिसमें हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं शती से माना गया है, अतः इसे शुक्ल जी के काल-विभाजन का परिष्कृत रूप नहीं माना जा सकता। डॉ. श्यामसुंदर दास ने जो काल - विभाजन किया, वह भी शुक्लानुसार ही है, परंतु आधुनिक काल को 'नवीन विकास का युग' कहा है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी द्वारा दिए गए 'वीरगाथाकाल' को आदिकाल' ही कहा। डॉ. रामबहोरी शुक्ल एवं डॉ. भगीरथ प्रसाद मिश्र का 'हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास' ग्रंथ भी प्रकाश में आया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने 'हिंदी - साहित्य के अतीत में भी रीतिकाल के नामकरण एवं अंतर्विभाजन के क्षेत्र में नया प्रयास करते हुए भी शेष बातों में पूर्ववर्ती परंपरा

का निर्वाह किया है। राहुल सांकृत्यायन ने आदिकाल को 'सिद्ध सामंत युग' की संज्ञा दी।

अतः स्पष्ट है काल-विभाजन के इन सभी प्रयत्नों में आचार्य शुक्ल और हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत सर्वाधिक मान्य है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने प्रवृत्तियों को आधार बनाकर कालों का सुव्यवस्थित विभाजन किया है। डॉ. धीरेंद्र वर्मा तथा अन्य सहयोगियों द्वारा संपादित भारतीय हिंदी परिषद के इतिहास में केवल तीन युगों की कल्पना की गई है - आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल। उनका मानना है कि मध्यकालीन चेतना एक ही रही है। संतकाव्य, प्रेमाख्यानक काव्य, रामकाव्य, कृष्णकाव्य, वीरकाव्य, रीतिकाव्य की धाराएं पूरे मध्यकाल में प्रवाहित होती रहीं। किंतु यह पूर्णतः उचित नहीं है, यह है कि सत्रहवीं शताब्दी के आते-आते मुख्य प्रवृत्ति बदल गई थी। भक्ति के स्थान पर अलंकरण और श्रृंगार विलास की प्रधानता हो गई। काव्य लिखने का ढंग बदल गया था। इससे काव्य की चेतना और काव्य के रूप में भी स्पष्ट अंतर आ गया। अतः मध्यकाल की प्रवृत्तियों के आधार पर दो कालों में विभाजित करना ज़रूरी हो गया। इसी प्रकार आधुनिक काल का प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से माना जाता है। सन् 1857 की क्रांति मध्य युग की समाप्ति, पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान एवं जीवन-दर्शन का प्रभाव के फलस्वरूप आधुनिक युग का प्रारंभ हुआ। इसमें भी प्रवृत्तियों में परिवर्तन दिखाई दिया। कभी छायावाद, कभी प्रगतिवाद तो कभी प्रयोगवाद, निरंतर साहित्य की धारा बदलती रही । तद्नुसार काल-विभाजन किया गया। हिंदी साहित्य के काल - विभाजन को मुख्यतः निम्न शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है -

1. आदिकाल - 10वीं शती से 14वीं शती तक
2. पूर्वमध्यकाल - 14वीं शती से 17वीं शती तक
3. उत्तरमध्यकाल - 17वीं शती से 19वीं शती तक
4. आधुनिक काल - 19वीं शती से अब तक

यही काल-विभाजन हिंदी साहित्य के इतिहासकारों के बीच मान्य है ।

स्वप्रगति परीक्षण

नीचे दिए गए प्रत्येक कथन को ध्यानपूर्वक पढ़ें और सत्य अथवा असत्य का चयन करें -

1. मिश्रबंधुओं ने 'मिश्रबंधु विनोद' में हिंदी साहित्य के कालखंडों कोउपकालखंडों में विभक्त करने का प्रयास किया है।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'अलंकार काल' को हिंदी साहित्य के विकासवादी नामकरणों में सम्मिलित किया है।
3. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल द्वारा दिए गए 'वीरगाथाकाल' को 'आदिकाल' कहा है।
4. डॉ. धीरेंद्र वर्मा द्वारा संपादित भारतीय हिंदी परिषद के इतिहास में केवल तीन युग माने गए हैं - आदिकाल, मध्यकाल, और आधुनिक काल।

2.7 विभिन्न कालों में नामकरण सम्बन्धी विवाद

सर्वप्रथम जार्ज ग्रियर्सन ने कालों के नामकरण का कार्य किया। तत्पश्चात मिश्रबंधुओं को यह श्रेय प्राप्त हुआ। इसके बाद रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा अन्य परवर्ती विद्वानों ने नामकरण का प्रयास किया। प्रत्येक काल पर विचार आवश्यक है।

आदिकाल - हिंदी साहित्य का प्रारंभिक काल जिरो आदिकाल, वीरगाथा काल. चारण काल, सिद्ध सामंत काल आदि अनेक संज्ञाओं से विभूषित किया गया है हिंदी का सबसे अधिक विवादाग्रस्त काल है। शायद ही भारत के साहित्य के इतिहास में इतने विरोधों और स्वतोव्याघातों का युग कभी आया हो। इसकी कालावधि 10वीं से 19वीं शताब्दी मानी गई है। विभिन्न विद्वानों ने इसका नामकरण इस प्रकार किया है -

1. ग्रियर्सन - चारणकाल
2. मिश्रबंधु - प्रारंभिक काल
3. रामचंद्र शुक्ल - आदिकाल अथवा वीरगाथाकाल
4. राहुल सांकृत्यायन - सिद्ध सामंत काल
5. महावीर प्रसाद द्विवेदी - बीजवपन काल
6. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - वीर काल
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी - आदिकाल
8. रामकुमार वर्मा - संधिकाल एवं चारणकाल

जार्ज ग्रियर्सन ने विभिन्न कालों के नामकरण का कार्य किया। उन्होंने आरंभिक काल को 'चारण काल' नाम दिया, पर इसके पक्ष में वे ठोस तर्क नहीं दे सके। वे हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रारंभ 643 ई. से करते हैं, पर इसके पक्ष में किसी प्रवृत्ति का उल्लेख नहीं कर सके। वस्तुतः इस प्रकार की रचनाएं 1000 ई. के बाद से ही मिलती है। अतः यह नामकरण अनुपयुक्त प्रतीत होता है । मिश्रबंधुओं ने इस काल को 'प्रारंभिक काल कहा तथा उन्होंने अपने ग्रंथ में हिंदी भाषा को आधार बनाते हुए इस कालखंड विशेष को 'पूर्व प्रारंभिक हिंदी' 'चंद्रपूर्व की हिंदी' 'रासो काल' 'उत्तर आरंभिक हिंदी आदि नाम दिए हैं । परं इनमें कोई भी नाम इस संपूर्ण कालखंड का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। तत्पश्चात आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्येतिहास के इस कालखंड का नाम 'वीरगाथाकाल' रखा। इस नाम के विषय में वे स्वयं लिखते हैं- "... आदिकाल की इस दीर्घ परंपरा के बीच प्रथम डेढ़ सौ वर्ष के भीतर तो रचना की किसी विशेष का निश्चय नहीं होता है - धर्म, नीति, शृंगार, वीर सब प्रकार की रचनाएं दोहों में मिलती हैं। इन अनिर्दिष्ट लोकप्रवृत्ति के उपरांत जब से मुसलमानों की चढ़ाइयों का आरंभ होता है तब से हम हिंदी साहित्य की प्रवृत्ति एक विशेष रूप में बंधती हुए पाते हैं। राजाश्रित कवि अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन करते थे । यही प्रबंध रासो के नाम से पाए जाते हैं जिसे लक्ष्य करके इस काल को

हमने 'वीरगाथा काल" कहा है। उन्होंने 12 पुस्तकों के आधार पर यह नाम दिया है। किंतु केवल इस आधार पर यह नाम देना उचित नहीं है। इस काल में वीरकाव्य के अतिरिक्त धार्मिक, श्रृंगारिक और लौकिक साहित्य की रचना हुई । वीरगाथा नाम देने से इन प्रवृत्तियों की उपेक्षा हो जाती है।

राहुल सांकृत्यायन ने विवेच्य काल को 'सिद्ध - सामंत युग' कहा है । यह वर्ग केवल सिद्ध और सामंत वर्ग की ओर संकेत करता है । सिद्ध रचनाकार थे, जबकि सामंत प्रेरक थे। इन्होंने कई प्रवृत्तियों की उपेक्षा की। नाथपंथी और हठयोगी कवियों तथा खुसरो आदि की काव्य प्रवृत्तियों का इस नाम में समावेश नहीं होता । अतः यह नाम भी उचित नहीं है । विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा दिया गया नाम 'वीरकाल' भी इसी की पुनरावृत्ति है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'आदिकाल' नाम दिया है। उन्होंने आदिकाल के अंतर्गत धार्मिक रचनाओं का भी समावेश किया है। उन्होंने इस काल की श्रृंगारिक प्रवृत्ति वाली रचनाओं, लौकिक काव्य के आधार पर आदिकाल नाम दिया। डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'आदिकाल' को दो खंडों में विभाजित किया संधिकाल और चारणकाल। संधिकाल जहां भाषा को आधार बनाकर दिया गया है, वहीं चारणकाल एक वर्गविशेष का बोध कराता है। इस नामकरण की कमज़ोरी यह है कि इसमें किसी प्रवृत्ति को आधार नहीं बनाया गया है। अतः यह नामकरण भी उचित नहीं। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि 'आदिकाल' ही ऐसा नाम है, जिस पर इतिहासकार किसी-न-किसी रूप में सहमत हैं। इसमें सभी प्रवृत्तियों का समावेश संभव हो जाता है। साथ ही उस व्यापक पृष्ठभूमि का बोध होता है, जिस पर आगे आने वाले साहित्य का विशाल स्वरूप आधारित है। भाषा-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी इस काल में भाषा का प्रारंभिक काल देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रवृत्तियों के आदिम रूप भी इस काल में देखने को मिलते हैं। साथ ही परवर्ती साहित्य की विभिन्न शैलियों और काव्यरूपों का आदि रूप भी इस काल

के साहित्य में प्राप्त हो जाता है। अतः 'आदिकाल' नाम सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

भक्तिकाल - आदिकाल के बाद 14वीं से 17वीं शती में कालखंड को 'पूर्वमध्यकाल' अथवा 'भक्तिकाल' की संज्ञा दी गई है। 'भक्तिकाल' नामकरण का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को जाता है। इस काल को कुछ विद्वान 'पूर्वमध्यकाल' नाम देने के पक्ष में भी हैं। यद्यपि दोनों नाम काफी लोकप्रिय हैं, किंतु 'पूर्वमध्यकाल' नाम से प्रवृत्ति विशेष का परिचय नहीं मिलता है। इस काल के साहित्य में 'भक्ति' की प्रबलता रही, अतः 'भक्तिकाल' नाम अधिक उचित प्रतीत होता है ।

मध्यकाल को दो भागों में बांटा गया (1) पूर्वमध्यकाल रीतिकाल (2) उत्तरमध्यकाल । उत्तरमध्यकाल को ही रीतिकाल से अभिहित किया गया । इस काल को लेकर भी अनेक विवाद रहे। मिश्रबंधुओं ने इसे 'अलंकृत काल' कहा है, रामचंद्र शुक्ल ने 'रीतिकाल', विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे 'शृंगार काल' की संज्ञा दी, तथा रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने 'कला काल' का नाम दिया है। डॉ. ग्रियर्सन ने इस काल की रचनाओं में काव्यकला की प्रमुखता देखी, किंतु काव्यकला के युग में नामकरण का स्पष्ट विश्लेषण उन्होंने नहीं किया है।

मिश्रबंधुओं ने इसे 'अलंकृत काल' कहा है। किंतु इस नाम को स्वीकार कर लेने से इस युग की मुख्य प्रवृत्ति शृंगार और शास्त्रीयता की उपेक्षा हो जाती है। साथ ही केवल अलंकारों की ही प्रमुखता नहीं थी । किंतु मिश्रबंधुओं ने 'अलंकृत' शब्द का प्रयोग काव्य के लिए किया है, न कि रीति के लिए और इस काल में अलंकार एक काव्यांग के लिए रूढ़ हो गया था।

आचार्य शुक्ल के द्वारा दिया गया 'रीतिकाल' नाम सभी विद्वानों ने एकमत से स्वीकृत किया है। यह वामन द्वारा दिए गए 'रीति' से भिन्न है। क्योंकि वामन द्वारा दिया गया 'रीति' शब्द 'विशिष्ट पद रचना' के लिए है तथा शुक्ल जी ने इसका प्रयोग तत्कालीन लिखित लक्षण ग्रंथों के लिए किया। आचार्य शुक्ल ने इसे एक दृष्टिकोण माना है। अतः उनके अनुसार जिस कवि का दृष्टिकोण

रीतिबद्ध हो उसे भी रीतिकाव्य के अंतर्गत रखा जा सकता है। अतः शुक्ल जी द्वारा दिया गया नाम काफी हद तक सही है।

डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने इस काल को 'कला काल' नाम दिया। रसाल जी ने भी मिश्रबंधुओं और ग्रियर्सन का ही अनुसरण किया। वस्तुतः "कला काल से रीतिकाल के काव्य के बहिरंग पक्ष का ही स्वरूप स्थिर हो पाता है, उससे उस युग की व्यापक शृंगारिक चेतना की अवमानना हो जाती है। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे 'शृंगार काल' नाम दिया। उनका मत है कि शृंगार की धारा 17वीं से 19वीं शती तक निरंतर प्रवाहमान रही। शृंगार का ही इस काल में वर्चस्व रहा।

वस्तुतः हिंदी साहित्य के उत्तरमध्यकाल में रीतिग्रंथों का ही बोलबाला रहा। इस काल की रचनाओं में यदि शृंगारिक छंदों का समावेश हुआ, तो उसका मुख्य कारण इसकी शृंगारिक प्रवृत्ति के स्थान पर आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना रहा। किंतु सभी कवियों का मुख्य ध्येय लक्षण ग्रंथों की रचना ही रहा है। यदि समग्रता की दृष्टि से देखें तो 'रीतिकाल' 'श्रृंगारकाल' की अपेक्षा अधिक उचित बैठता है और विद्वानों के बीच यह मान्य भी हुआ है ।

आधुनिक काल काल - विभाजन में अंतिम काल के रूप में 'आधुनिक काल' को स्थान मिला है। आधुनिक शब्द दो अर्थों का द्योतक है। एक है- मध्यकाल से भिन्नता, और दूसरा है - इहलौकिक दृष्टिकोण। 1857 का विद्रोह मध्ययुग की समाप्ति एवं आधुनिक युग के प्रारंभ का शंखनाद था। देश के प्रबुद्ध वर्ग में नई चेतना का संचार हुआ। इसी प्रकार रीतिकाल में साहित्य अपने कथ्य और शैली की दृष्टि से रूढ़ हो चुका था। आधुनिक काल ने इसी जड़ता को समाप्त करके नवजागरण का संदेश दिया। साहित्यकारों ने मनुष्य के सुख-दुख को वाणी दी। साहित्य का प्रधान विषय सांसारिक हो गया तथा धर्म, दर्शन, साहित्य, चित्र आदि के प्रति नया दृष्टिकोण सामने आया । इस प्रक्रिया में विषय, कथ्य के साथ-साथ भाषा भी परिवर्तित हो गई, खड़ी बोली ने ब्रजभाषा का स्थान ले लिया।

आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल को दो भागों में विभक्त किया है । पुनः दोनों खंडों को दो प्रकरणों में विभक्त किया है । गद्य के पहले प्रकरण में ब्रजभाषा तथा दूसरे में खड़ी बोली है। जबकि दूसरे खंड को काव्य रूप में निरूपित किया तथा इसे तीन उत्थानों में विभक्त किया है। यदि इस विभाजन को सूक्ष्मता से अवलोकित किया जाए तो हम पाएंगे कि इसमें एकरूपता और समानता का अभाव है। इससे इतिहास का नैरंतर्य बाधित हुआ है। साथ ही उन्होंने इस युग को 'गद्य युग' नाम से अभिहित किया है, किंतु ऐसा करने पर काव्य प्रवृत्ति की उपेक्षा हो जाएगी। यद्यपि इस काल में समाचार-पत्र, उपन्यास, निबंध और कहानी का तेज़ी से विकास हुआ, किंतु आधुनिक विचारों से ओत-प्रोत कविताएं भी सामने आईं। अतः इसे पूर्णतः 'गद्ययुग' कहना उपयुक्त नहीं है। इसलिए इस कालखंड का नाम 'आधुनिक काल' ही अधिक उचित प्रतीत होता है। आधुनिक काल को निम्न रूपों में विभक्त किया जा सकता है -

(क) पुनर्जागरण काल (भारतेंदु काल) - (1857-1900 ई.)

(ख) जागरण सुधार काल (द्विवेदी काल) - (1900-1918 ई.)

(ग) छायावाद - (1918-1936 ई.)

(घ) छायावादोत्तर काल

1. प्रगति - प्रयोग काल - (1936-1950 ई)

2. नवलेखन काल - 1950 - अब तक

(क) पुनर्जागरण काल (भारतेंदु काल)

आधुनिक काल के इस प्रथम कालखंड को 'भारतेंदु युग' एवं 'पुनर्जागरण काल' दोनों नामों से पुकारा जाता है। यह काल राष्ट्रीय-सांस्कृतिक पुनर्जागरण का काल था। इस समय राष्ट्र में नई चेतना प्रस्फुटित हुई। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण ने साहित्य की दिशा ही बदल डाली। अनेक राष्ट्रीय नेताओं एवं समाज सुधारकों ने साहित्य को भी प्रभावित किया। साहित्य नए दृष्टिकोण से संयुक्त हुआ और मध्यकालीन जड़ता को उसने पूरी तरह तोड़

दिया। इसी कारण इसे 'पुनर्जागरण काल' नाम दिया गया। 'भारतेंदु युग' नाम दिए जाने के पीछे कारण था कि इस कालखंड में भारतेंदु हरिश्चंद्र पूरे हिंदी साहित्य पर छाए रहे। उन्होंने भाषा एवं विधा की दृष्टि से हिंदी गद्य को एक नई दिशा दी। साहित्य को मध्ययुगीय वातावरण से निकाल कर आधुनिक रूप प्रदान करने का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को है। साथ ही भाषा, भाव की दृष्टि से भी वे अगुवाई करने वाले रहे। अतः यह नाम देना इस काल खंड के लिए उचित ही है।

(ख) जागरण सुधार काल (द्विवेदी काल)

इस काल में राष्ट्रीयता, प्रगति और स्वच्छंद काव्यधारा विकसित हुई । इस काल को 'द्विवेदी युग' के नाम से भी पुकारा जाता है। इसका कारण महावीर प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व रहा है। उन्होंने 1903 में 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन के साथ भाषा के परिमार्जन एवं परिष्कार का कार्य किया। समकालीन कवि एवं लेखकों पर उनकी अमिट छाप थी। वे न केवल एक श्रेष्ठ लेखक थे अपितु संपादक एवं समालोचक भी थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र की तरह महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी दिशा-निर्देशक की भूमिका का निर्वाह किया। उन्होंने भाषा के मानवीकरण का कार्य किया । इसी काल को 'द्विवेदी युग' कहा जाता है। राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और साहित्यिक आधार पर इस काल को 'सुधार काल' भी कहा जाता है। इस काल में साहित्य के कथ्य और भाषा में सुधार और परिष्कार हुआ। इसके अतिरिक्त इस काल में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक स्तर पर भी जागरण सुधार की दिशा में प्रगति हुई । इसका भी असर साहित्य पर पड़ा। इस दृष्टि से इस काल को 'जागरण सुधार काल' कहा जाता है ।

(ग) छायावाद

द्विवेदी युग के बाद की धारा को 'छायावाद' नाम से जाना जाता है। इस कालखंड में 'रोमांटिक' उत्थान की वह काव्यधारा है जो युगवाणी बनी। सामान्य रूप से भावेच्छवास - प्रेरित स्वच्छंद कल्पना- प्रवृत्ति ही वह 'स्वच्छंद' प्रवृत्ति है जो

देशकालगत वैशिष्ट्य के साथ संसार की सभी जातियों के विभिन्न उत्थानशील युगों की आशा-आकांक्षा में निरंतर व्यक्त होती जा रही है। स्वच्छंदता की उस सामान्य भावधारा की विशेष अभिव्यक्ति का नाम हिंदी साहित्य में छायावाद पड़ा। आचार्य शुक्ल का विचार था कि "बांग्ला में आध्यात्मिक प्रतीकवादी रचनाओं को छायावाद कहा जाता था, जिसके अनुकरण में हिंदी में यह नाम चल पड़ा।" लेकिन हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि बांग्ला में 'छायावाद' नाम कभी प्रचलित नहीं था। इससे यह स्पष्ट है कि 1920 से पूर्व 'छायावाद' का नाम चल पड़ा था। इन लेखों से यह स्पष्ट है कि छायावादी काव्य की अस्पष्टता के लिए 'छायावाद' नाम का प्रयोग किया था। यह नाम आगे चलकर प्रचलित हुआ।

(घ) छायावादोत्तरकाल

1. प्रगति - प्रयोग काल

1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के साथ ही नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्यधारा का जन्म हुआ उसे प्रगतिवाद की संज्ञा दी गई। इसके प्रथम अधिवेशन में प्रगतिशील साहित्य पर विचार-विमर्श हुआ। कालक्रम से सही प्रगतिवाद हो गया।

प्रयोगवाद का समय तारसप्तक कविता संग्रह के प्रकाशन सन् 1943 से माना जाता है। 'प्रयोगवाद' नाम चलने के कारण 'तारसप्तक' का संपादकीय है, जिसमें 'प्रयोग' 'प्रयोगशीलता' की बार-बार चर्चा की गई है। 'प्रयोग' की इसी आवृत्ति के कारण इसे 'प्रयोगवाद' नाम दे दिया गया। किंतु इस नाम से अज्ञेय सहमत नहीं है। किंतु जिस प्रकार छायावादियों के न चाहते हुए भी 'छायावाद' की संज्ञा चल पड़ी, उसी तरह 'प्रयोगवाद' नाम भी चल पड़ा।

2. नवलेखन काल - प्रयोगवाद के बाद कई प्रवृत्तियां उभरी, अतः यह प्रश्न भी उपस्थित हुआ कि किस नाम से इस साहित्य प्रवाह को पुकारा जाए। वस्तुतः स्वतंत्रता के बाद लिखी गई कविताओं को 'नई कविता' कहा गया, जिनमें नए मूल्यों और नए शिल्प विधान का अन्वेषण किया गया। इस हेतु 'नई कविता'

नाम दिया गया। किंतु इस नाम पर यह आपत्ति उठाई जाती है कि नयापन किसी साहित्य की विकासशील परंपरा का द्योतक होता है। अतः इस काल को ही 'नई कविता' नाम क्यों दिया गया। किंतु नई कविता नाम स्वतंत्रता के बाद लिखी गई उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया जो अपने विषय और शिल्प में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का ही विकास होकर भी विशिष्ट हैं। इस कालखंड में अन्य अनेक काव्यांदोलन भी उभरे; यथा अकविता, अतिकविता, अस्वीकृत कविता आदि। साहित्य की सभी प्रवृत्तियों के लिए 'नया' शब्द मानो रूढ़ हो गया। अतः इस कालखंड को 'नवलेखन काल' कहना अधिक उचित होगा।

2.8 सार संक्षेप

उपर्युक्त विवरण से विद्यार्थियों एवं पाठकों की अनेक शंकाओं का निवारण हो सकेगा। इतिहास क्या है? साहित्य और इतिहास का क्या अंतर्संबंध है? तथा साहित्य व इतिहास की मूल अवधारणा क्या है? इसका परिचय भी प्राप्त हो सकेगा। इतिहास मात्र अतीत का ब्यौरा नहीं है, यह शंका भी दूर हो सकेगी। साथ ही साहित्येतिहास लेखन के विविध पक्षों की जानकारी भी पाठकों को हो सकेगी। साहित्येतिहास लेखन की विभिन्न पद्धतियों को समझकर यह निर्धारित करना कि कौन-सी पद्धति श्रेष्ठ है, यह भी इस इकाई का मूल उद्देश्य है। इतिहासकार सामग्री का संकलन कर, किस प्रकार उसे कालखंडों में निर्धारित करता है, इससे भी विद्यार्थी परिचित हो सकेंगे। वह युग प्रवृत्तियों व परंपरा के आधार पर वर्तमान संदर्भ में मूल्यांकन करता है। साहित्येतिहास लेखन की परंपरा जो गार्सा द तासी से प्रारंभ होकर रामविलास शर्मा तक चली है, इन सबका परिचय भी हो सकेगा। साहित्य के इतिहास लेखन के क्रम में आने वाली समस्याओं के बारे में विद्यार्थी जान पाएंगे और उनका निवारण भी कर सकेंगे। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हमने काल - विभाजन एवं नामकरण की समस्या के विषय में जाना। इसके अध्ययन से हम यह समझ सकते हैं कि काल-विभाजन

व नामकरण की आवश्यकता न केवल अध्ययन की सुविधा के लिए है वरन इतिहास को यथातथ्य समझने के लिए भी है। वस्तुतः काल - विभाजन व नामकरण करते समय प्रायः साहित्यिक प्रवृत्ति को आधार बनाया जाता है तथा, ऐसा न होने पर राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं व्यक्तिपरक आधारों को भी अपनाया जा सकता है। इन्हीं आधारों का व्यापक मूल्यांकन करने पर हिंदी साहित्य के इतिहास को हम चार भागों - आदिकाल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल और आधुनिक काल में बांट पाए। यही क्रमशः आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल कहलाए। इनका व्यापक अध्ययन आगे की इकाइयों में करेंगे।

2.9 मुख्य शब्द

- **आदिकाल** - हिंदी साहित्य का प्रारंभिक काल, जिसे विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं, जैसे वीरगाथा काल, चारण काल, सिद्ध सामंत काल। इसमें धार्मिक, शृंगारिक और वीर प्रवृत्तियों का समावेश है।

- **वीरगाथा** - वीरों के पराक्रम और गाथाओं का वर्णन करने वाले साहित्य को दर्शाने वाला शब्द, जो आदिकाल में विशेष रूप से प्रचलित था।

- **भक्तिकाल** - 14वीं से 17वीं शताब्दी के बीच का साहित्यिक काल, जिसमें भक्ति साहित्य की प्रधानता थी। इसे पूर्वमध्यकाल के रूप में भी जाना जाता है।

- **रीतिकाल** - 17वीं से 19वीं शताब्दी तक का काल, जिसमें काव्यशास्त्र और अलंकारों का विशेष प्रभाव था। इसे अलंकृत काल, श्रृंगार काल या कला काल भी कहा गया है।

- **आधुनिक काल** - 1857 के बाद का काल, जिसमें साहित्य का दृष्टिकोण इहलौकिक और सामाजिक हुआ। इसे नवजागरण और खड़ी बोली का काल भी कहा जाता है।

- **पुनर्जागरण काल (भारतेंदु काल)** - आधुनिक काल का आरंभिक चरण (1857-1900), जिसमें देशभक्ति और समाज सुधार की चेतना जाग्रत हुई।

- **द्विवेदी काल** - जागरण सुधार काल (1900-1918), जिसमें गद्य साहित्य का विकास हुआ और खड़ी बोली का प्रयोग बढ़ा।

- **छायावाद** - आधुनिक हिंदी काव्य का एक विशिष्ट कालखंड (1918-1936), जिसमें व्यक्तिगत भावनाओं, कल्पना और सौंदर्य की प्रधानता थी।

- **प्रगति - प्रयोग काल** - छायावादोत्तर काल का एक चरण (1936-1950), जिसमें प्रगतिशील विचारधारा का प्रभाव बढ़ा और साहित्य में प्रयोगशीलता आई।

- **नवलेखन काल** - 1950 के बाद का समय, जिसमें नए विचारों और शैलियों का उदय हुआ।

2.10 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. सत्य

उत्तर: 2. असत्य

उत्तर: 3. सत्य

उत्तर: 4. असत्य

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास – डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
2. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. डेविड रुबिन (अनुवाद: डॉ. राजेंद्र मिश्र), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2005
3. हिंदी साहित्य: उद्‌भव और विकास – डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2010 (संशोधित संस्करण)
4. हिंदी साहित्य और समकालीन संदर्भ – डॉ. रमेश चंद्र शाह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
5. हिंदी साहित्य के आयाम – डॉ. शंभुनाथ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015
6. हिंदी का समाजशास्त्र – डॉ. अशोक कुमार पांडेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018

2.12 अभ्यास प्रश्न

1. हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल को 'वीरगाथा काल' नाम देने का आधार क्या था? विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गए अन्य नामों का भी उल्लेख कीजिए।
2. भक्तिकाल और रीतिकाल में साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रमुख अंतर क्या हैं? इन दोनों कालों के नामकरण के पीछे क्या कारण हैं?
3. आधुनिक काल को हिंदी साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण क्यों माना गया है? इस काल में भाषा और शैली में आए प्रमुख परिवर्तनों का वर्णन कीजिए।
4. रीतिकाल के साहित्य में शृंगारिक प्रवृत्ति के वर्चस्व का क्या कारण था? इसके नामकरण के संदर्भ में प्रमुख विद्वानों के विचारों की व्याख्या कीजिए।
5. मिश्रबंधुओं, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, और हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा दिए गए नामकरणों की तुलना करते हुए बताइये कि हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल के नामकरण में विविधता क्यों पाई जाती है।

इकाई - 3

हिंदी साहित्य का आदिकाल

3.1 प्रस्तावना
3.2 अध्ययन के उद्देश्य
3.3 आदिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि
3.4 आदिकाल: नामकरण और सीमा
3.5 आदिकालीन साहित्य के प्रेरक बिंदु
3.6 आदिकाल की परिस्थितियाँ
3.7 आदिकालीन साहित्य पर प्रभाव
3.8 सार संक्षेप
3.9 मुख्य शब्द
3.10 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.12 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में हिंदी साहित्य के आदिकाल का अध्ययन प्रस्तुत है, जिसमें उस समय की ऐतिहासिक, राजनीतिक, और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का गहन विश्लेषण किया गया है। आदिकाल के आरंभ में, भारत में अनेक राजवंशों का उदय हुआ, लेकिन सत्ता का केंद्रीकरण न होने से राजनीतिक अस्थिरता और विघटन की स्थिति बनी रही। इस काल में राजदरबारों से जुड़े चारण कवियों ने वीरगाथा साहित्य की रचना की, जिसमें वीरता, शौर्य, और राजपूती परंपरा का गौरवगान है। दूसरी ओर, समाज में जैन, बौद्ध, सिद्ध, नाथ, और शैव-शाक्त मतों का भी प्रभाव था, जो धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से आदिकालीन साहित्य को

प्रेरित करने वाले प्रमुख घटक बने। संस्कृत, अपभ्रंश, और देशभाषा के संपर्क से साहित्य में विषय, शैली और भाषा की विविधता भी दिखाई देती है। इस अध्याय के माध्यम से, आदिकाल के साहित्यिक प्रवृत्तियों और युगीन चेतना को समझने का प्रयास किया गया है, जो हिंदी साहित्य के विकास में एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं।

3.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- आदिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और हिंदी साहित्य के आदिकालीन युग की विशिष्ट परिस्थितियों का विश्लेषण।
- आदिकाल में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक परिवर्तनों का साहित्य पर प्रभाव।
- इस युग में साहित्यिक प्रवृत्तियों और विधाओं के विकास की प्रक्रिया।
- राजदरबारी संस्कृति, चारण परंपरा, वीरगाथा साहित्य, और धार्मिक मतों का आदिकालीन साहित्य पर प्रभाव।

3.3 आदिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

प्रत्येक साहित्य अपने युग की उपज होता है। आदिकाल भी इसका अपवाद नहीं है। जिन स्थितियों- परिस्थितियों ने हिंदी साहित्य के इस काल का निर्माण कराया उसकी स्थिति बहुत चिंतनीय रही है। तत्कालीन भारत अस्त-व्यस्त था। अंतिम हिंदू सम्राट हर्ष का राज्य जीर्ण-शीर्ण हो रहा था। पूर्व में पालों, दक्षिण में राष्ट्रकूटों तथा पश्चिम में प्रतिहारों की राज्यशक्ति को सुदृढ़ करने के प्रयास सफल नहीं हो सके थे। तभी राजपूतों का उदय हुआ। इसके साथ ही तोमर, चालुक्य, प्रतिहार, गुर्जर, चालुक्य, चंदेल आदि भी राज्यसत्ता की दौड़ में

सम्मिलित हो गए। परिणाम यह हुआ कि भारत में कोई केंद्रीय शक्ति नहीं रही। सत्तालोलुपता अपने चरम पर पहुंच गई। राजनीति युद्ध लिप्सा से घिर गई। ऐसे विघटन भरे वातावरण में भी साहित्य धारा बही, इसका कारण राज्याश्रय था। राजाओं ने देशभाषा को योगदान दिया। भाषा के विकास के साथ ही साहित्य का भी विकास होने लगा। साहित्य भी परिस्थितियों से लड़कर समृद्ध हुआ। मुसलमानों के आक्रमण एवं राजपूतों के युद्ध उन्माद ने जीवन और साहित्य को एक नया आयाम दिया। तभी दरबारी संस्कृति का पल्लवन हुआ । दरबारी कवियों ने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति प्रारंभ कर दी। इन्हें ही 'चारण' कहा गया। वीर गाथाओं से संबद्ध साहित्य इन्हीं का रचा हुआ है।

वस्तुतः आदिकाल की इन परिस्थितियों ने साहित्य को पूर्णतः प्रभावित किया। दूसरी ओर जैन, बौद्ध तथा सिद्ध-नाथ आदि हिंदी क्षेत्र के मत सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर सामने आ रहे थे। तंत्र-मंत्र भी जनमानस को भयभीत कर रहे थे। ऐसे में, गुर्जर सम्राट, सिद्धराज - जयसिंह के जीवनकाल में जैनसाहित्य को प्रोत्साहन मिलने लगा था। प्राकृत - व्याकरण 'सिद्ध हेमचंद्र शब्दानुशासन' के रचयिता हेमचंद्र इन्हीं के दरबारी थे। यही कारण है कि इस युग में पर्याप्त जैन - प्रबंध काव्य, पुराण तथा चरित काव्यों की रचना भी होती रही।

सम्राट हर्ष के समय तक तो बौद्ध धर्म फलफूल ही रहा था किंतु धीरे-धीरे इसमें मूर्ति-पूजा, यक्ष - पूजा तथा तंत्र-मंत्र साधना भी समाहित होने लगी। बज्रयान के रूप में धीरे-धीरे समाहित हो रही यह हठयोग साधना बौद्ध धर्म से जुड़ती चली गई। बौद्ध धर्म के इसी विकृत रूप से धीरे-धीरे सिद्ध परंपरा उभरी। समन्वयवादी इस देश की संस्कृति का प्रभाव इन मतों, दर्शनों और विचारों पर भी पड़ा। शैव तथा शाक्तों के मत भी इसमें समाहित होते चले गए। इन्हीं परिस्थितियों में रचयिताओं ने साहित्य रचना की।

3.4 आदिकाल: नामकरण और सीमा

आदिकाल की अनेक समस्याओं में से सर्वप्रथम तो उसके नामकरण की ही है। सबसे पहले मिश्रबंधुओं ने इसे 'आदिकाल' नाम से पुकारा, किंतु आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग में वीरगाथात्मक रचनाओं की प्रधानता के कारण इसे 'वीरगाथाकाल' नाम दिया यद्यपि उन्होंने इस युग की रचनाओं के दो प्रकार (देशभाषा और अपभ्रंश) की होने की ओर भी संकेत किया है, किंतु फिर भी इस काल को वे 'वीरगाथा काल' ही मानते हैं। यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि उन्होंने कवित्व की दृष्टि से देशभाषा में विरचित रासो ग्रंथों को ही अधिक महत्वपूर्ण माना और उनमें पाई जाने वाली प्रवृत्ति अर्थात वीरगाथा को ही युग प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार, उस काल की जनरुचियां और प्रवृत्तियां "वीरता" में सबसे अधिक केंद्रित थीं। किंतु बाद में सैकड़ों ग्रंथ ऐसे मिल गए जिनमें आध्यात्मिक और धार्मिक के साथ कुछ अन्य प्रकार के विषयों को भी काव्यबद्ध किया गया है। वीरगाथा कहने से वे कृतियां इसमें समाहित नहीं हो पातीं। अतः आदिकाल कहना ही समीचीन रहेगा।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने शुक्ल जी से ही प्रभावित होकर इसे "चारण काल" की संज्ञा दी है। किंतु इस युग के अंतर्गत उन्होंने जिन रचनाओं को स्थान दिया, उनमें से - अधिकांश 16वीं शती से लेकर 19वीं शती तक में रचित हैं और जो रचनाएं इस काल सीमा में आती हैं, उनमें से किसी का भी रचयिता कोई चारण नहीं है। अतः यह नाम भी उचित नहीं है।

राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश और हिंदी को एक ही भाषा मानते हुए इस काल का नामकरण 'सिद्ध-सामंत-युग' किया है। सिद्ध वज्रयानी सिद्धों की अपभ्रंश रचनाओं का प्रतीक है और 'सामंत' हिंदी के वीर रसात्मक साहित्य का सूचक। किंतु उनका मत स्वीकार करने योग्य नहीं है । एक तो अपभ्रंश और हिंदी को एक मानना अनुचित है, क्योंकि ऐसा करने पर अपभ्रंश से विकसित अन्य भाषाएं

भी हिंदी की शाखाएं बन जाएंगी। दूसरे, यदि हिंदी और अपभ्रंश को एक कहा जाएगा तो प्राकृत व पाली को भी एक ही कहा जाएगा। अतः यह नाम भी यथातथ्य नहीं है। डॉ. श्याम सुंदर दास ने युग को 'आदियुग' मानते हुए इसका समय 1050 से 1400 तक माना । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 1000 से 1400 तक के कालखंड को 'आदिकाल' कहना उचित समझा, साथ ही कहा "वस्तुतः हिंदी का ' आदिकाल' शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि वह काल कोई आदिम मनोभावपन्न, परंपरा-विनिर्मुक्त, काव्य रूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है। यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परंपरा - प्रेमी, रूढ़िग्रस्त और सजग-सचेत, कवियों का काल है। यदि पाठक इस धारणा से सावधान रहें तो यह नाम बुरा नहीं है ।

उक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट है कि आदिकालीन साहित्य के लिए नामकरण तो भिन्न-भिन्न प्रस्तावित हुए किंतु समय-सीमा में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई देता । वैसे भी सर्वाधिक स्वीकृत नाम 'आदिकाल' ही रहा है। यद्यपि यह नाम भी इस काल की संपूर्ण साहित्यिक प्रवृतियों तथा लोक - चित्तवृत्तियों को प्रतिबिंबित नहीं करता किंतु यह तो स्पष्ट ही है कि "प्रारंभ काल" के नाम पर इसमें सभी कुछ समाहित हो जाता है। सभी परस्पर विरोधी प्रवृत्तियां, विशेषताएं तथा काव्य-धाराएं इसमें सहज ही समा जाती हैं। स्वयं शुक्ल जी ने भी यह स्वीकारा है। अतः समय सीमा और नामकरण के इस समग्र विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश विद्वत - साहित्य - समाज द्वारा स्वीकृत नाम 'आदिकाल' ही प्रामाणिक एवं समर्थ नाम है। किसी साहित्यिक प्रवृत्ति तथा लोक चित्तवृत्ति को प्रतिबिंबित न करके भी यही नाम स्वीकृत किया जा सकता है।

3.5 आदिकालीन साहित्य के प्रेरक बिंदु

हिंदी साहित्य के इतिहास में आरंभिक वर्षों के रूप में जिस समय की चर्चा की गई है, उसमें मुख्यतः संस्कृत, अपभ्रंश तथा हिंदी भाषाओं में रचित साहित्य ही मिलता है। इसमें भी संस्कृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में धार्मिक तथा लौकिक साहित्य अधिक मिलता है। हिंदी (देशभाषा) में लिखित साहित्य का स्वरूप हमें 'आदिकाल' में देखने को मिलता है।

ये भाषाएं एक-दूसरे से इतनी संबद्ध हैं कि इनका संबंध अटूट है। अपभ्रंश ने हिंदी साहित्य को प्रभावित किया, साथ ही संस्कृत भाषा का प्रभाव हिंदी एवं अपभ्रंश दोनों पर पड़ा है। हिंदी भाषा पर संस्कृत भाषा - साहित्य का प्रभाव इतना अधिक है कि संस्कृत को हिंदी की जननी कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यहां तक कि अपभ्रंश काल में भी संस्कृत तथा साहित्य का व्यापक क्षेत्र में लेखन-प्रचलन था । अतः विषय- वैविध्य तथा परंपरा- बाहुल्य हिंदी को संस्कृत से ही मिला। संस्कृत साहित्य की पूर्ववर्ती परंपराओं की छाया भी हिंदी साहित्य के सभी कालों में यत्र-तत्र देखी जा सकती है। साथ ही अपभ्रंश साहित्य के सिद्ध तथा जैन साहित्य का प्रभाव भी यहां अत्यंत मुखर है। इस युग का संस्कृत साहित्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, नीति, दर्शन, जीवन, काव्यशास्त्र, काव्य संप्रदाय, इतिहास, पुराण, जीवनी, काव्य एवं नाटक आदि अनेक विषय लेकर चिंतन-मनन कर रहा था तो अपभ्रंश साहित्य केवल धार्मिक विषयों को समेटे हुए था। इस तरह स्पष्ट है कि संस्कृत की व्यापक साहित्यधारा से कवियों, लेखकों व साहित्यकारों ने ऊर्जा तथा प्रभाव भी ग्रहण किया है।

एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि युगीन परिस्थितियों के कारण संस्कृत साहित्य के विषय-वैविध्य से संपन्न अधिकांश ग्रंथ, हिंदी क्षेत्रों में नहीं लिखे गए। हिंदी क्षेत्र तो निरंतर आक्रमणों के कारण वीर तथा भक्ति तक ही सीमित होकर रह गया। जहां अपभ्रंश साहित्य सिद्ध, नाथ तथा जैन संप्रदायों की

संकीर्णता में विभक्त था, वहीं संस्कृत साहित्य किसी भी जाति, धर्म या संप्रदायों से मुक्त और सार्वभौमिक वन रहा था।

अतः कुल मिलाकर यह काल साहित्य समाज तथा साहित्यकार के बीच सौहार्द का काल रहा। संस्कृत, अपभ्रंश तथा देशी भाषाओं के इस युग में ही हिंदी साहित्य के इतिहास का श्री गणेश हो रहा था। इसी धारा से आदिकालीन साहित्य की वैविध्यमयी धाराएं प्रस्फुटिक हो रही थीं। यही साहित्यधारा हिंदी के इस प्रारंभिक काल की प्रेरणा बन रही थी। अतः इस प्रेरक पृष्ठभूमि के योगदान को भी विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न: 1. आदिकाल का नामकरण सबसे पहले _____ ने किया था।

प्रश्न: 2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल को _____ नाम दिया।

प्रश्न: 3. हिंदी भाषा पर सबसे अधिक प्रभाव _____ भाषा का पड़ा है।

प्रश्न: 4 राहुल सांकृत्यायन ने आदिकाल का नामकरण _____ के नाम से किया।

3.6 आदिकाल की परिस्थितियाँ

साहित्य का मूल उत्स जीवन है और विभिन्न प्रकार की सामयिक स्थितियां - परिस्थितियां तथा परिवेश के घटनाचक्र मिलकर जीवन के सद्-असद् रूपों का सृजन करते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि साहित्य अगर लोक-चेतना का संवाहक है तो लोक-चेतना युग-विशेष की राजनीति, धर्म, दर्शन संस्कृति तथा वैचारिक पृष्ठभूमि को प्रभावित करती है। यही परिस्थितियां साहित्यकार को साहित्य-रचना हेतु प्रेरणा देती हैं। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आदिकाल की परिस्थितियों पर विचार आवश्यक है :

ऐतिहासिक परिस्थितियां - हिंदी साहित्य का जन्म ऐसे समय हुआ जब भारत पर मुसलमानों के आक्रमण आरंभ हो गए थे। राजपूत एवं हिंदू शासक स्वरक्षा में लगे हुए थे। हर्ष की मृत्यु के उपरांत भारत में केंद्रीय शक्ति का अभाव था। सातवीं-आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक के राजनीतिक घटनाचक्र ने हिंदी साहित्य को भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित हिंदी साहित्य का आदिकाल किया। हर्ष की मृत्यु के बाद प्रतिहार, तोमर, गुर्जर, राठौर, चौहान, चंदेल, परमार आदि छोटे-छोटे राजवंश सत्ता-संघर्ष में लिप्त हो गए। इन राजवंशों के परस्पर युद्ध कलह एवं विघटन से सामंतवादी प्रथा को प्रोत्साहन मिला।' निरंकुश शासन-प्रणाली से राजनीतिक चेतना और विदेशी आक्रमणकारियों से मुकाबला करने की शक्ति भी क्षीण होती चली गई। राष्ट्र बिखर गया। यही कारण है कि युग की चेतना और साहित्य के संदेश में राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति की भावना का अभाव देखा गया है।

राजभक्ति प्रमुख होने लगी। परिणामतः राजभक्ति का, शौर्य गान एवं प्रशस्ति का प्रचलन प्रारंभ हुआ। आदिकाल का विकास भी इसी परिवेश में हो रहा था। हिंदू शासकों का आपसी कलह, राज्यों का बिखराव, मान-अपमान व प्रतिष्ठा को लेकर हो रहे युद्ध आदि ने देश को खोखला और जर्जर बना दिया। ऐसे समय में मुसलिम आक्रमणकारियों ने देश की नींव हिला दी। वास्तव में, इस युग में व्यक्तिगत वीरता के तो कई उदाहरण मिल जाते हैं, किंतु संगठन शक्ति का अभाव दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि विलासिता, आपसी फूट एवं संघर्ष शक्ति के अभाव के कारण भारतीय शक्ति छिन्न-भिन्न दिखाई दी। ऐसे में रूढ़ियों और परंपराओं की जड़ें हिलने लगीं। जनसंपर्क के अभाव तथा दोषपूर्ण राजनीति से देश अपनी चेतना खो बैठा। क्षुद्रता, अहंकार, मिथ्याचार और ब्राह्य आडंबरों में डूबा भारत मुगलों की शक्ति के आगे नतमस्तक होने लगा। महमूद गजनवी के आक्रमणों ने शक्तिशाली राजपूतों की सत्ता को चुनौती दी, तत्पश्चात मुहम्मद गौरी ने भी राजपूतों की जड़ें हिला दीं। गौरी के पश्चात कुतुबुद्दीन

ऐबक ने भारत की सत्ता संभाली तथा लगभग सारे हिंदी प्रदेश पर राज्य किया। आदिकाल की काल सीमा में शासन करने वाले तुर्क - अफगानों से हुए युद्ध-वर्णन वहां उपलब्ध हैं । अव्यवस्था, लूटमार तथा बिखराव के इस युग में कवियों ने दरबारी आश्रय भी ग्रहण किया था और उनकी प्रशस्ति के गान लिखे थे। ऐसे परिवेश और राजनीतिक स्थिति में जन्मे आदिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति इसी कारण वीर और श्रृंगार बनी। यद्यपि इस युग में नीति, शक्ति या धर्म और लोक को भी साहित्य में अपनाया गया, परंतु प्रधानता युद्ध वर्णनों और शौर्य गानों की रही। इस विषय में डॉ. राजनाथ शर्मा का कथन उल्लेखनीय है - "हिंदी साहित्य के आरंभिक काल के रासो ग्रंथ प्रधानतः मध्यप्रदेश के समकालीन राजाओं के राजकवियों द्वारा रचे गए थे। प्रत्येक कवि अपने आश्रयदाता को सर्वश्रेष्ठ योद्धा सिद्ध करना चाहता था, अतः अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों की भरमार रही।" एक विशेष बात यह है कि मुसलिम शासकों के दरबार में हिंदू कवि थे तथा हिंदू शासकों के दरबार में मुसलिम विद्वान थे। अतः परस्पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी था। आत्मरक्षा के लिए किए गए संघर्ष का परिणाम हमें पूर्व मध्ययुग की कविता में देखने को मिलता है। इस प्रकार राजपूतों के उदय तथा उनके अद्भुत शौर्य भरे युद्ध कारनामे यदि युगीन साहित्य में समाहित हुए तो पराजित हिंदुओं के अहिंसक विश्वास को जैन-बौद्ध धर्म से संबद्ध साहित्य ने उजागर किया। चंदबरदाई, विद्यापति, अमीर खुसरो तथा अन्य कवियों के साहित्य में इसे सहज ही देखा जा सकता है।

2. धार्मिक परिस्थितियां - राजनीतिक दृष्टि से तो तत्कालीन भारत अस्त-व्यस्त था ही, धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से भी उथल-पुथल बनी रही । यद्यपि भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धांत वही रहे, किंतु उनका बाह्य आकार काफी परिवर्तित था। धर्म की दृष्टि से यह अराजकता का युग था । हर्ष के शासनकाल में बौद्ध धर्म को संरक्षण प्राप्त हुआ, साथ ही विभिन्न धर्मों में परस्पर समन्वय भी था।

किंतु हर्ष की मृत्यु के बाद स्थिति परिवर्तित होती गई तथा धर्म में अराजकता का प्रवेश हो गया। धर्म में कर्मकांडों की प्रधानता हो गई। फलस्वरूप जादू-टोने, तंत्र-मंत्र का बाहुल्य हो गया। बौद्ध धर्म भी अनेक सिद्धांतों– हीनयान, महायान, वज्रयान, मंत्रयान, सहजयान में बंट गया। फलस्वरूप सिद्धांतों में भी परिवर्तन हुआ तथा हठयोग, मकारों को भी विशेष स्थान प्राप्त हुआ। स्पष्ट है कि यह मत विकारों को प्रश्रय देने लगा था तथा वाममार्गी हो गया था। तंत्र-मंत्र, जादू-टोने तथा भोग-विलास को लेकर चलने वाले थे। वाममार्गी ही बौद्ध-सिद्ध कहलाए तथा दूसरी तरफ धर्म-नियम, संयम और हठयोग साधना के कठिन मार्ग को अपनाने वाले नाथ - सिद्ध के रूप में जाने गए। पर मूलतः दोनों बौद्ध ही थे। प्रत्येक धर्म एक-दूसरे को नीचा दिखाने में लगा था। इस संदर्भ में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन है- "इस काल के हिंदी प्रदेश और उसकी सीमाओं के आसपास जैन धर्म बौद्ध धर्म के वज्रयानी रूप, तांत्रिक मत, उमा-महेश्वर योग साधना, वामाचार, सिद्ध एवं नाथ पंथ, शैव मत, वैष्णव मत, शाक्त मत आदि विभिन्न मत प्रचलित थे। जैन, वैष्णव, शैव, शाक्त अदि संप्रदायों की प्रतिद्वंद्विता राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास कर रही थी। भीतरी विद्वेश से जर्जर देश में इतिहास से टकराने वाला संकल्प न रह गया। दुर्भाग्यवश ये धर्म मनुष्य की सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति के साधन बनने के स्थान पर विच्छेद-भाव उत्पन्न करने के साधन बने। "

बौद्ध धर्म के समान ही इस काल की धार्मिक पृष्ठभूमि के निर्माण में जैन धर्म का भी हाथ है। इस काल में जैन धर्म एक नवीन रूप में ढल रहा था। जैन धर्म पर एक ओर तो बौद्धों की तांत्रिक पद्धति का प्रभाव था, दूसरी ओर जैन मतावलंबी साहित्यकार अपनी रचनाओं में पौराणिक कथाओं का कुछ परिवर्तित रूप में समावेश कर रहे थे। इस काल की धार्मिक स्थिति का अध्ययन करते समय यह

बात भी ध्यान देने योग्य है कि इस समय के शासक न केवल अलग-अलग धर्मो के अनुयायी थे। बल्कि वे इस धर्म के प्रचार-प्रसार में सहायक थे। यथा पाल शासक बौद्ध थे पर उन्होंने सहजयानी बौद्धों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन दिया। इसके विपरीत सेन शासक वैदिक धर्मावलंबी थे, अतः उन्होंने ब्राह्मण धर्म को प्रश्रय दिया। इस काल में पहले तो जैन, बौद्ध एवं वैदिक धर्म साथ-साथ प्रचलित थे, किंतु कालांतर में वैदिक धर्म अधिक लोकप्रिय हो गया तथा बौद्ध एवं जैन धर्म कमज़ोर पड़ गए। इसका कारण था इन धर्मों की अहिंसा आधारित नीति जो उस समय के युद्धकाल के अनुरूप नहीं थी। इसी कारण शैव मत अधिक लोकप्रिय हो गया । सेन शासन तथा मालवा के शासक वैदिक मतावलंबी थे। कलचुरि शासक शैव थे तथा गाहड़वार स्मार्त थे। अन्य अनेक राजपूत राजा भी किसी न किसी रूप में ब्राह्मण धर्म को ही मानते थे। दूसरी तरफ भारत में इसलाम धर्म का प्रवेश तुर्कों, अफगानों के माध्यम से ही हुआ । अतः ऐतिहासिक दृष्टि से, इस काल में दक्षिण में वैष्णव शक्ति का विकास तो हुआ, पर उसका प्रभाव उत्तर भारत पर इस समय न पड़ सका। इस युग में तंत्र-मंत्र, टोने-टोटके, इसलाम की बढ़ती शक्ति, अनेक धार्मिक दल, सांप्रदायिक विद्वेश एक साथ देखने को मिलते हैं। धर्म का वास्तविक स्वरूप किसी के सामने स्पष्ट न था और न ही उसे स्पष्ट करने वाला कोई सद्गुरु ही था। इन विषम परिस्थितियों ने साहित्य को प्रभावित किया। इनके कर्मकांड और आडंबर यहां भी प्रवेश कर गए। धर्म के इस स्वरूप का प्रभाव भी आदिकाल के अधिकांश साहित्य पर दिखाई देता है।

3. सांस्कृतिक परिस्थितियां - सम्राट हर्ष के समय में भारत न केवल राजनीतिक रूप से सुदृढ़ था, वरन् भारतीय संस्कृति का यशगान भी जगतव्यापी था। भारत संसार के अत्यधिक सभ्य देशों में गिना जाता था तथा यहां की सभ्यता अति विकसित थी। तत्कालीन समाज की सभ्यता की झलक स्थापत्य, मूर्ति एवं संगीत कला में दिखती हैं। भुवनेश्वर, खजुराहो, सोमनाथ के मंदिर इसी कथन के प्रमाण

हैं। डॉ. नगेंद्र ने हिंदी साहित्य के आदिकाल को दो संस्कृतियों के संक्रमण तथा ह्रास - विकास की गाथा कहा है। हिंदी साहित्य के आदिकाल का प्रारंभ ऐसी ही अवस्था में हुआ जबकि आदिकाल के समापन के समय भारत पर मुसलिम संस्कृति ने अपना प्रभाव छोड़ दिया था। जैसा कि डॉ. नगेंद्र का कथन है, "भारत में मुसलिम संस्कृति के समय यहां की विभिन्न जातियों, मतों, आचार-विचारों में दीर्घ काल से चली आती हुई समन्वय की एक व्यापक प्रक्रिया पूर्णता को पहुंच रही थी।'

स्पष्ट है कि यवन आक्रमण के फलस्वरूप इसलाम की संस्कृति भारत आई, ऐसे में हिंदू एवं इसलाम संस्कृति का एक-दूसरे से प्रभावित होना सहज ही था। यद्यपि प्रारंभ में ये दोनों संस्कृतियां एक-दूसरे की विरोधी एवं प्रतिद्वंदी बनी, किंतु बाद में भारत की कलाओं में इसलाम की संस्कृति का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है। वहीं मूर्तिकला के संदर्भ में भी मुसलिम आक्रमणकारी विध्वंसक बनकर भारत आए तथा भारतीय शिल्प पर उनका प्रभाव स्वतः लक्षित है। अभिप्राय यह है कि आदिकाल संक्रमण काल ही था तथा दोनों संस्कृतियों ने किसी न किसी रूप में एक-दूसरे प्रभाव ग्रहण किया था।

4. सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां - इस युग में निरंतर युद्धों ने जनजीवन को भी अस्थिर कर दिया था। जनता की ओर राजाओं का ध्यान नहीं गया। देश की राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थितियों का प्रभाव सामाजिक व आर्थिक स्थिति पर भी पड़ा। इन्हीं के फलस्वरूप समाज कई वर्गों में विभक्त हो गया। कोई भी संगठित सामाजिक व्यवस्था नहीं थी। धार्मिक अराजकता ने सामाजिक जीवन को आडंबरयुक्त बना दिया था। ब्राह्मणों का प्रभुत्व कम हुआ। राजपूत व क्षत्रिय जातियां प्रभावशाली होने लगीं। राजा अपनी शौर्यगाथाओं और प्रशस्तियों के आदि हो चुके थे। किंतु दुर्भाग्यवश उनका लक्ष्य राष्ट्रहित नहीं वरन् निजी स्वार्थ थे। वैयक्तिक स्पर्धाओं की मानो होड़ लगी थी। समाज में जातिप्रथा एवं वर्ण व्यवस्था अपने चरम पर थी। सामाजिक रीतिरिवाज और विधि-विधानों का

कट्टर–प्रचलन समाज को तोड़ रहा था। जनता निराश्रित थी, क्योंकि धर्म एवं शासन दोनों से ही उन्हें संबल नहीं मिल सका था। युद्ध लिप्सा ने जनता को पूरी तरह से तोड़ दिया था। ईश्वर को लेकर भी मतभिन्नता थी। उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की खाई और अधिक चौड़ी होती जा रही थी। नारी भोग्या बनकर स्वयंवर की शोभा बन रही थी। शिक्षा के अभाव के कारण सांप्रदायिक तनाव, सामाजिक कुरीतियां एवं अंधविश्वास अपने चरम पर थे। निर्धनता और महामारी सामाजिक जीवन को और अधिक विषम बना रही थी। इन विकट परिस्थितियों में भी आदिकालीन कवियों ने काव्य-रचना की सामग्री जुटाई। समाज में घटित चक्र साहित्य में भी प्रतिबिंबित होने लगा। अनेक वर्गों में विभाजित समाज अपने आदर्श खो चुका था। समाज की संकीर्णता अनेक प्रतिबंधों में अभिव्यक्ति पाने लगी थी। इस संदर्भ में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन उल्लेखनीय है - "इस काल के समाज में विभिन्न वर्गों के विविध प्रकार के उत्सव और वस्त्राभूषणों के प्रति प्रेम प्रचलित था। आखेट, मल्लयुद्ध, धूतक्रीड़ा, संगीत, नृत्य आदि मनोरंजन के साधन थे। कवियों का विशेष आदर था।" भुवनेश्वर, कोणार्क और पुरी के मंदिरों की अद्भुत कला के माध्यम द्वारा तत्कालीन जीवन की विविधतापूर्ण प्रेरणाएं स्पष्ट हो जाती हैं।"

आर्थिक स्थिति का अनुमान युगीन युद्धों से लगाया जा सकता है। विदेशी आक्रमणकारियों का एक उद्देश्य लूटपाट करना था । भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था, किंतु विदेशी आक्रांताओं ने यहां की संपत्ति लूटकर इस राष्ट्र को लूट लिया। उन्होंने यहां के मंदिरों, नगरों, गांवों तथा संग्रहालयों को लूटा । प्रतिदिन की लूटपाट का दुष्प्रभाव अर्थ-व्यवस्था तथा सामाजिक-व्यवस्था पर काफी पड़ रहा था। जनता लूटमार से आक्रांत थी। अंधविश्वास, अपनी सीमा से हिंदी साहित्य का आदिकाल बाहर जाकर निर्वाह किए जाने वाले रीतिरिवाज तथा तरह-तरह के विधि-विधान मनुष्य को खोखला कर रहे थे। शासक वर्ग भोग-

विलास में पड़े थे, आर्थिक-उद्धार तथा सामाजिक-कल्याण के लिए पूर्णतः निष्क्रिय थे।

अतः स्पष्ट है कि यह युग धर्म और संस्कृति की तरह सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से भी अराजकता का युग था। जमींदार, शासक, भूस्वामी का अधिपत्य का यह काल साहित्य में भी मुखर हुआ। भक्ति से श्रृंगार का मिश्रण, धर्म से अंधविश्वास और कुरीतियों का मिश्रण, जाति पाति, मानसिक अशांति का मिश्रण सब इसी तथ्य के साक्षी हैं। इन सब को सहज ही आदिकाल में देखा जा सकता है।

5. साहित्यिक परिस्थितियां - इस युग की साहित्यिक परिस्थिति अत्यंत समृद्ध रही। संस्कृत साहित्य अलंकृत साहित्य बन चुका था। साथ ही अपभ्रंश, प्राकृत साहित्य की धारा तथा हिंदी भाषा साहित्य धारा प्रचलन में थी। इस काल में भाषा और साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। संस्कृत काव्यधारा के लोकप्रिय कवि कुंतक, क्षेमेंद्र, अभिनव गुप्त, कुमारिल भट्ट, विश्वनाथ, श्रीहर्ष, जयदेव, भवभूति जैसे साहित्यकार एक साथ देखने को मिलते हैं।

दूसरी ओर प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य पर दृष्टि डालने पर भी उत्कृष्ट साहित्य पर दृष्टि पड़ती है। स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल जैसे कवियों ने उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की । इनकी रचनाओं में प्राकृत - अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी का'मिश्रित रूप मिलता है। दूसरी ओर सरहपज्ञ, लुइपा, कण्हपा तथा गोरखनाथ जैसे सिद्ध नाथ कवि अपभ्रंश के साथ लोकभाषा हिंदी का प्रयोग कर रहे थे। राजशेखर की 'कर्पूरमंजरी', अमरुक का 'अमरुकशतक' तथा हाल की 'आर्या सप्तशती' अपभ्रंश की उत्तम कृतियां थीं। वास्तव में इस काल की तीन भाषाएं तीन तरह की रचना प्रवृत्तियों की सूचक बनीं। संस्कृत राज प्रवृत्ति की सूचक है तो प्राकृत व अपभ्रंश धर्मग्रंथों की भाषा है और हिंदी जनता की मानसिक स्थितियों एवं भावनाओं को प्रतिनिधित्व देने वाली भाषा है।

संस्कृत में जहां आचार्य कवि हुए, जिनकी रचनाएं अनुकरणीय थीं, दूसरी तरफ अपभ्रंश में लिखा गया साहित्य था। अपभ्रंश की प्रमुख रचनाओं में संदेश - रासक 'पउमचरिउ' तथा 'परमात्माप्रकाश' जैसी रचनाएं थी। यहां एक तथ्य और उल्लेखनीय है कि प्राकृत अपभ्रंश से ही आधुनिक भारतीय भाषाओं का जन्म हुआ। अपभ्रंश के परवर्ती रूप को ही 'अवहट्ट' या 'पुरानी हिंदी' कहा जाता है। आदिकाल में वीरगाथाओं और प्रशस्तियों का आगार रहा। इसका कारण आश्रयदाता राजाओं के शौर्यगान की प्रवृत्ति रही है। विजयपाल रासो, हम्मीररासो, पृथ्वीराज रासो, खुमान रासो, बीसलदेव रासो आदि रचनाएं इसका प्रमाण हैं। इस युग में वीर भक्ति तथा श्रृंगार के साथ धार्मिक, लौकिक और नीतिपरक साहित्य भी लिखा जाता रहा है। इस साहित्य राजन का माध्यम बनने वाली भाषाओं में वैदिक संस्कृत, पालि-प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी भाषाएं अपना योगदान देती रहीं। आदिकाल में नरपति नाल्ह, जगनिक, अमीर खुसरो, चंदबरदाई जैसे साहित्यकार हुए। विविध काव्य रूपों और शैलियों में बीरगाथाओं को प्रस्तुत करते हुए युद्धों के सजीव वर्णन, श्रृंगारिक रचनाएं प्रशस्तियां एवं शौर्य-गान के अतिशय चित्रण इस काल में प्रमुखता से हुए।

3.7 आदिकालीन साहित्य पर प्रभाव

उक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट ही है कि आदिकाल राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक बिखराव का काल है। इन परिस्थितियों ने उस युग के साहित्य और साहित्यकारों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। वस्तुतः समय एवं परिस्थिति ही साहित्य को आकार प्रदान करती है। साथ ही जनसामान्य को दिशा देने का काम करते हैं। शासक एवं जनसामान्य को ही साहित्य ने वाणी दी है। साहित्यिक सामग्री और साहित्यकारों की मानसिकता की द्योतक बनीं साहित्य - प्रवृत्तियां उस युग की परिस्थितियों से प्रभावित और नियंत्रित होती रहीं। इस काल की विकट एवं उलझी हुई परिस्थितियों में एक

भाषा का विकसित होना सहज नहीं था। अतः यही कारण है कि इस युग में एक साथ कई भाषाओं में और विविधतापूर्ण साहित्य रचा गया। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन उल्लेखनीय है : "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चितवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। ... जनता की चितवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अतः कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।"

स्पष्ट है कि आदिकाल भी इन्हीं परिस्थितियों से प्रभावित होता रहा। चाहे वह वीरगाथा साहित्य हो या भक्ति, नीति और प्रकृति संबंधी हो, चाहे शृंगारपरक साहित्य हो अथवा प्रशस्ति साहित्य सभी अपने युग को दर्शाते हैं। शासकों ने ही भाषा और साहित्य को आश्रय दिया, फलस्वरूप इसे दिशा भी मिली अतः कहा जा सकता है कि युगीन परिवेश और परिस्थितियों से साहित्य नियमित एवं नियंत्रित हुआ।

3.8 सार संक्षेप

आदिकाल हिंदी साहित्य का प्रारंभिक काल था, जो लगभग 1050 से 1400 तक माना जाता है। यह काल भारत में राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अस्थिरता के समय में विकसित हुआ, जब मुसलमानों के आक्रमणों और राजपूतों के आपसी संघर्षों के कारण देश में केंद्रीय सत्ता का अभाव था। हर्ष के शासन के बाद छोटे-छोटे राजवंशों के बीच युद्ध और सत्ता संघर्ष की स्थिति बनी, जिससे साहित्य में वीरता, शौर्य और राजभक्ति की प्रवृत्तियाँ प्रबल हुईं। इस काल में संस्कृत, अपभ्रंश और हिंदी भाषाओं के साहित्य का प्रभाव था। अपभ्रंश साहित्य ने हिंदी को प्रेरित किया, जबकि संस्कृत साहित्य का प्रभाव हिंदी और अपभ्रंश दोनों पर पड़ा। इसके अतिरिक्त जैन और बौद्ध धर्म की प्रवृत्तियाँ भी इस साहित्य पर

प्रभावी रही। राजाओं और दरबारी कवियों ने वीरगाथाओं और शौर्य गीतों की रचनाएँ कीं, जो इस काल के साहित्य की प्रमुख विशेषता बन गईं। आदिकाल का नामकरण, समयसीमा और इसके साहित्यिक प्रवृत्तियों पर विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न थे, लेकिन 'आदिकाल' शब्द सर्वप्रमुख और स्वीकृत रहा। इस काल के साहित्य में विशेष रूप से वीरता, राजभक्ति, धार्मिक विषयों और समाज के विभिन्न पक्षों पर चर्चा की गई, और यह हिंदी साहित्य के प्रारंभिक आधार के रूप में उभरा।

3.9 मुख्य शब्द

- **सत्तालोलुपता** - सत्ता के प्रति लालायित रहना
- **राज्याश्रय** - राजाओं का आश्रय
- **दरबारी** - राजा के दरबार में रहने वाले
- **प्रशस्ति काव्य** - किसी की प्रशंसा में लिखी गई रचना
- **वीरगाथा**: युद्ध और शौर्य पर आधारित काव्य रचनाएँ।
- **राजभक्ति**: राजा के प्रति निष्ठा और सम्मान।
- **अपभ्रंश**: संस्कृत से विकसित प्राचीन भाषा।
- **संस्कृत साहित्य**: संस्कृत में लिखा प्राचीन साहित्य।

3.10 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. मिश्रबंधुओं

उत्तर: 2. वीरगाथाकाल

उत्तर: 3. संस्कृत

उत्तर: 4. सिद्ध-सामंत-युग

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास - डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
2. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. डेविड रुबिन (अनुवाद: डॉ. राजेंद्र मिश्र), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2005
3. हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास - डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2010 (संशोधित संस्करण)
4. हिंदी साहित्य और समकालीन संदर्भ - डॉ. रमेश चंद्र शाह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
5. हिंदी साहित्य के आयाम - डॉ. शंभुनाथ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015
6. हिंदी का समाजशास्त्र - डॉ. अशोक कुमार पांडेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018

3.12 अभ्यास प्रश्न

1. आदिकाव्य और मध्यकालीन काव्य की विशेषताओं में अंतर स्पष्ट करें।
2. "वीरगाथा काव्य" के प्रमुख उदाहरणों का उल्लेख करें और उनका विश्लेषण करें।
3. संस्कृत साहित्य के प्रभाव को हिंदी साहित्य में कैसे देखा जा सकता है? उदाहरण के साथ स्पष्ट करें।
4. 'अपभ्रंश' शब्द का अर्थ और उसका हिंदी साहित्य में योगदान समझाएं।
5. मध्यकालीन हिंदी साहित्य में 'राजभक्ति' की प्रवृत्ति को प्रमुख काव्य रचनाओं के माध्यम से स्पष्ट करें।

इकाई - 4

आदिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

4.1 प्रस्तावना
4.2 अध्ययन के उद्देश्य
4.3 सिद्ध साहित्य
4.4 जैन साहित्य
4.5 नाथ साहित्य
4.6 रासो साहित्य
4.7 लौकिक साहित्य
4.8 सार संक्षेप
4.9 मुख्य शब्द
4.10 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.12 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

आदिकालीन काव्य भारतीय साहित्य का वह प्रारंभिक काल है, जिसमें संस्कृत साहित्य की परंपराओं और भारतीय संस्कृति के मूल्यों का संचार हुआ। यह काल भारतीय काव्यशास्त्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि इस समय रचनाएँ मुख्यतः धार्मिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टिकोण से प्रेरित थीं। आदिकाल में काव्य की प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से भक्ति, वीरता, श्रृंगारी प्रेम, नीति, और दर्शन पर आधारित थीं। इस समय के काव्य में जीवन के विभिन्न पहलुओं की सूक्ष्मता से व्याख्या की गई, जो उस काल के समाज, धर्म, और संस्कृति को दर्शाती है।

इस अध्याय में हम आदिकाव्य के इन प्रवृत्तियों का गहराई से अध्ययन करेंगे, ताकि विद्यार्थियों को इस काल के काव्यशास्त्र और साहित्यिक दृष्टिकोण की समझ हो सके।

4.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- आदिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और उनका विश्लेषण।
- आदिकाव्य के विकास, उसकी विशेषताओं और उस समय के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का महत्व।
- आदिकाव्य में भक्ति, श्रृंगार, वीर, और नीति जैसे काव्य रूपों की पहचान।
- आदिकाव्य के साहित्यिक महत्व और उसके कालीन प्रभाव की स्पष्ट समझ।

4.3 सिद्ध साहित्य

सिद्ध संप्रदाय बौद्ध धर्म की ही परंपरा का एक आंदोलन था। सिद्धों की संख्या 84 मानी गई है। तांत्रिक क्रियाओं में आस्था के कारण इन्हें सिद्ध कहा गया। उनमें से कुछ तो सहजयानी और कुछ वज्रयानी थे। सहजयान का प्रवर्तन वज्रयान में प्रचलित बाह्मचार के विरुद्ध जन्म लेने वाली प्रतिक्रिया की देन थी । जीवन के सहज रूप को स्वीकार करने के कारण सहजयान में जीवन के भोग के लिए बहुत स्थान सुरक्षित था। वज्रयानियों ने भोग की इस प्रवृत्ति को घोर श्रृंगारिकता के समीप ला खड़ा किया था। प्रमुख सिद्ध कवि हैं सरहपा, शबरपा, कण्हपा, लुइपा, डोम्भिपा आदि। इन सभी सिद्धों के नाम के आगे लगा 'पा' शब्द सम्मानसूचक शब्द 'पाद' का ही विकृत रूप है। इनमें से 14 सिद्धों की रचनाएं ही उपलब्ध हैं। इन्हीं के द्वारा लिखा साहित्य 'सिद्ध साहित्य' कहलाता है।

इनका रचनाकाल सातवीं से तेरहवीं शती तक है। इन सिद्ध कवियों की रचनाएं मुख्यतः दो रूपों में मिलती हैं - 'दोहाकोश - तथा 'चर्यापद'। सिद्धाचार्यों द्वारा लिखित दोहों का संग्रह 'दोहाकोश' के नाम से जाना जाता है तथा उनके द्वारा रचित पद 'चर्यापद' या 'चर्यागीत' नाम से प्रसिद्ध हुए ।

सिद्ध साहित्य भोग का समर्थक है। इसमें पाखंड एवं अनुष्ठानों का विरोध है। सिद्ध साहित्य में गुरु का विशेष महत्व है। उनका मत है कि ब्रह्म की प्राप्ति की कृपा से ही संभव है। आचार्य द्विवेदी जी के अनुसार सिद्ध साहित्य की " रचनाओं में प्रधान रूप से नैरात्म्य भावना, काया योग, सहज शून्य की साधना और भिन्न प्रकार की समाधिजन्य अवस्थाओं का वर्णन है।" सिद्धों की भाषा 'अर्धमागधी अपभ्रंश' के निकट मानी जाती है क्योंकि इस साहित्य की भाषा को अपभ्रंश तथा हिंदी के संधिकाल की भाषा माना जाता है, अतः इसे 'संध्या भाषा' का नाम भी दिया गया है।

प्रभाव - सिद्ध कवियों का लक्ष्य साहित्य रचना नहीं था । वे तो अपने विचारों एवं सिद्धांतों की अभिव्यक्ति के लिए जनभाषा में लिखते थे। इनकी भाषा के अक्खड़पन का परवर्ती साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। इन्होंने सीधे शब्दों में अपनी बात न कहकर तंत्र-मंत्र के अंतर्गत प्रयुक्त होने वाले शब्दों के माध्यम से कही। संत कवि कबीरदास पर इनका प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है। इस संदर्भ में राहुल सांकृत्यायन का मत है "यही कवि हिंदी काव्यधारा के प्रथम स्रष्टा थे। नए-नए छंदों की सृष्टि करना तो इनका अद्भुत कवित्व था। इन्होंने दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि छंदों की सृष्टि की, जिन्हें हिंदी कवियों ने बराबर अपनाया है।" सिद्ध कवियों में सिद्ध सरहपा सबसे प्रमुख हैं। उनके प्रमुख ग्रंथ हैं - 'कायाकोष, दोहाकोष, सरहपादगीतिका तथा 'चर्यागीति - दोहाकोष' प्रमुख हैं। इस कृतियों की भाषा पर शौर सैनी अपभ्रंश का प्रभाव माना जाता है । कवि गुरु को प्रमुख स्थान दिया है तथा कहा है कि केवल शास्त्र ज्ञान से ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती।

यथा-

सहजे चिर करि वारुणी सधा, जे अजरामर होई टिर कांधा ।

दशमि दुआरत चिह्न रखइया, आइल गराहक अपणे बहिआ ।।

सरहपा के अतिरिक्त शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, शन्तिपा आदि उल्लेखनीय सिद्ध कवि हैं। शबरपा को सरहपा का ही शिष्य माना जाता है। 'चर्यापद' इनकी प्रसिद्ध कृति है। इन्होंने स्वाभाविक जीवन पर बल देते हुए माया मोह का विरोध किया है। चौरासी सिद्धों में लुइपा का सर्वोच्च स्थान है। इनके काव्य में दर्शन एवं रहस्य भावना का प्राधान्य है। डोम्भिपा ने 'डोम्बि गीतिका' की रचना की। इनके काव्य का मूल विषय भी साधना एवं गुरु का महत्व है। कण्हपा ने सर्वाधिक कृतियों की रचना की। इनमें 'दोहाकोष' प्रमुख है। इनके ग्रंथ दर्शन एवं तंत्र पर आधृत है। शान्तिपा ने मनुष्य के जीवन का मूल उद्देश्य सहजानंद की प्राप्ति को माना है। उन्होंने गुरु को मार्गदर्शक माना। इन कवियों की रचनाओं का मूल विषय साधना का निरूपण तथा अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन था। इन कवियों का लक्ष्य अलंकार या काव्य सौंदर्य न होकर लोकभाषा का प्रचार करना था। इसके लिए उन्होंने प्रतीकात्मक शैली अपनाई।

4.4 जैन साहित्य

आदिकालीन साहित्य में जैन कवियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। जैन शब्द 'जिन' से बना है जिसका अर्थ है सांसारिक आकर्षणों पर होने वाली विजय है। इस संप्रदाय के प्रवर्तक महावीर विजय पाने वाला। यह स्वामी थे। इसमें त्याग, अहिंसा एवं करुणा पर बल दिया गया है। यह त्याग केवल इंद्रिय निग्रह में ही नहीं अपितु सहिष्णुता में है। जैन मुनियों ने अपने धर्म का प्रचार लोकभाषा में किया । यह अपभ्रंश प्रभावित हिंदी थी। इनकी अधिकांश रचनाएं धार्मिक हैं। इन कवियों की कृतियां रास, फागु चरित्र आदि विविध काव्य रूपों में प्राप्त होती हैं। इन कृतियों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति मुख्य है, तथा घटनाओं का अभाव है। चरित्र

काव्यों में प्रसिद्ध पुरुषों की कथा है, किंतु इनमें भी धार्मिक भावना प्रमुख है। लौकिक काव्य होने पर भी इनमें धार्मिकता प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। हिंदुओं की पौराणिक कथाओं को आधार बनाया गया है तथा रहस्यवादी काव्यों की भी सृष्टि की गई है। वास्तव में इन कृतियों की भाषा शिष्ट और परिनिष्ठित है। इनमें योगींदु मुनि रचित 'परमात्मा प्रकाश' 'दोहा पाहुड़' तथा मुनि रामसिंह द्वारा रचित 'पाहुड़ दोहा' उल्लेखनीय है। जैन कवियों में रासो काव्यकारों के अतिरिक्त स्वयंभू एवं पुष्पदंत उल्लेखनीय हैं।

स्वयंभू को प्रथम जैन कवि माना जाता है। इनकी तीन प्रमुख कृतियां है, जिनके नाम हैं रिट्ठणेमि चरिउ' 'पउमचरिड' तथा 'स्वयंभू छंदस'। पउमचरित्र सर्वाधिक लोकप्रिय कृति है, यह जैन रामायण है तथा श्रीराम की कथा है। उन्होंने जैन धर्म की रीति-नीति के अनुसार रामकथा में परिवर्तन किया है। साथ ही कुछ नवीन प्रसंग भी जोड़े हैं। इस ग्रंथ में कवि ने प्रकृति वर्णन और युद्ध वर्णन का विराट अंकन किया है। काव्य सौंदर्य भी दृष्टिगोचर होता है। अलंकारों का प्रसंगानुकूल एवं सशक्त प्रयोग किया है। वस्तुतः कवि की शैली परंपरागत रूढ़ियों से ओत-प्रोत है तथा भाषा में सहज प्रेषणीयता है। रिट्टणेमि चरिउ में कृष्ण का चरित्र है तथा उन्हें महामानव के रूप में चित्रित किया है। यह कृति अपभ्रंश में रचित है। भाषा साहित्यिक तथा प्रवाहमय है।

दूसरे प्रधान कवि पुष्पदंत हैं। पहले ये शैव थे, किंतु बाद में जैन धर्म की दीक्षा ले ली। इनकी प्रधान कृतियां 'तिसट्टिमहापुरिसगुणलंकार महापुराण' तथा 'णायकुमार चरित्र' हैं। प्रथम कृति दो खंडों में विभक्त है। आदिपुराण खंड में ऋषभदेव तथा 23 तीर्थकरों का चित्रण है जबकि उत्तरपुराण खंड में रामायण तथा महाभारत की कथा वर्णित है। कवि ने स्वयं अपने इस महापुराण को महाकाव्य कहा है । कवि की शैली अलंकृत एवं क्लिष्ट है। इस ग्रंथ में लोकोक्तियों और मुहावरों का यथानुकूल प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त मेरुतुंग की प्रबंध

चिंतामणि' तथा मुनि रामसिंह की 'पाहुड़ दोहा' तथा धनपाल की 'भविसयत्त कहा' भी जैन साहित्य की उल्लेखनीय कृतियां हैं।

अपभ्रंश साहित्य की समृद्धि तथा हिंदी भाषा के विकास में जैन कवियों का उल्लेखनीय योगदान है। वस्तुतः अपभ्रंश ने हिंदी भाषा की पूर्वपीठिका के रूप में कार्य किया। हिंदी के प्रारंभिक स्वरूप की पहचान कराने में इस साहित्य का सर्वाधिक योगदान रहा। साथ ही अपभ्रंश के बाद की विकासशील लोकभाषा में भी जैन पुराण साहित्य तथा चरित काव्य की रचना हुई । जिसका प्रभाव परवर्ती साहित्य की भाषा पर पड़ा ।

4.5 नाथ साहित्य

सिद्धों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप नाथपंथी काव्य के रूप में एक ऐसी योगमार्गी धारा का विकास हुआ जो वाममार्गी भोग प्रधान सिद्धों की योग साधना के विरोध में उठ खड़ी हुई। नाथ साहित्य का प्रवर्तक गोरखनाथ को माना जाता है। इन्होंने पतंजलि के उच्च लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति को विशेष महत्व प्रदान किया। इन कवियों ने सिद्धों के विपरीत हठयोग साधना पर बल दिया । इन्होंने शैवमत को स्वीकार किया तथा शिव को आदिनाथ माना। इनके योगमार्ग में मूलतः संयम तथा सदाचार पर बल दिया गया । नाथ संप्रदाय को अनेक नामों से पुकारा जाता है - सिद्धमत, योग मार्ग, योग संप्रदाय, अवधूत मत आदि। इन कवियों के अनुसार मुक्ति का मार्ग सांसारिक आकर्षण एवं भोग विलास है। आचार्य शुक्ल के अनुसार इनकी संख्या नौ है। जो इस प्रकार हैं - नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चंद्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरखनाथ, चर्पट, जलघर और मल्यार्जुन । नाथ संप्रदाय में 'नाथ' शब्द का अर्थ 'मुक्ति देने वाला' प्रचलित है। उन्होंने अपने साहित्य में स्पष्ट किया है कि यह मुक्ति सांसारिक आकर्षणों एवं भोग विलास से है। इस प्रकार इस संप्रदाय के योगियों ने निवृत्ति के मार्ग पर बल दिया तथा गुरु को मार्गदर्शक माना । उनके साहित्य में विविध साधना द्वारा

कुंडलिनी जाग्रत कर परमानंद की क्रिया का विवरण मिलता है। इनके अनुसार गुरु द्वारा दिखाए मार्ग से वैराग्य प्राप्त हो सकता है। कुंडलिनी जागरण की इस प्रक्रिया से ही आनंदप्राप्ति संभव है। इस संप्रदाय में प्राण साधना से पहले इंद्रिय निग्रह पर बल दिया जाता है। इसके अंतर्गत प्रथम शर्त नारी से विमुख रहने की प्रवृत्ति है क्योंकि इनके अनुसार नारी ही चारित्रिक पतन का प्रमुख कारण है। नाथपंथ में गोरखनाथ को अन्यतम माना जाता है। उन्होंने लगभग 40 ग्रंथों की रचना की। जिनमें प्रमुख हैं- सबती पद, सिष्यादरसन, प्राण संकली, नरवै बोध, आत्मबोध आदि। इन ग्रंथों में गुरु महिमा, इंद्रिय निग्रह एवं प्राण साधना का विवेचन है। आगे चलकर कबीरदास ने इसी प्रवृत्ति को अपनाया। इसके अतिरिक्त अन्य संत कवियों पर भी नाथ प्रभाव कहा जा सकता है। नाथ साहित्य भी सिद्ध साहित्य की भांति सिद्धांत प्रतिपादन हेतु लिखा गया। अतः यह प्रतीकात्मक शैली में रचित है। इन्होंने अनेक प्रतीक यथा सूर्य, गगन, चंद्र, कमल आदि प्रतीक लिए। इनके यहां सूर्य 'ह' के तथा चन्द्र 'ठ' में प्रतीक है। सूर्य तथा चंद्र के मिलन को ही 'हठयोग' कहा गया है। योगसाधना का ज्ञान होने पर ही इन प्रतीकों को समझा जा सकता है। इनकी भाषा 'पुरानी हिंदी' है, जो अपभ्रंश से प्रभावित है तथा इसमें पंजाबी, ब्रज, अवधी आदि शब्दों का सम्मिलन हो गया है। नाथ साहित्य में गोरखनाथ को सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। तांत्रिक विधान की जानकारी इनके ग्रंथों में मिलती है। किंतु आचार्य शुक्ल इन्हें साहित्य की श्रेणी में नहीं स्वीकार करते हैं कि उनकी रचनाओं का जीवन की स्वाभाविक सारणियों, अनुभूतियों और दशाओं से कोई संबंध नहीं। वे सांप्रदायिक शिक्षा मात्र हैं। अतः शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आ सकती। इन रचनाओं की परंपरा को हम काव्य या साहित्य की कोई धारा नहीं कर सकते। गोरखनाथ की हास्य व्यंग्यात्मक शैली प्रशंसनीय है -

दूधाधारी पर धरि चित्त, नागा लकड़ी चाहै मित्त।
मौनी कसै मयंत्र की आस, बिनु गुर गुदड़ी नहीं बेढास।।

गोरखनाथ के अतिरिक्त नाथ संप्रदाय के अन्य प्रमुख कवियों में चर्पटनाथ का भी उल्लेख किया जाता है। वे गोरखनाथ के शिष्य थे। इनकी वाणी में भी हठयोग साधना की झलक है।

प्रभाव - नाथ योगियों ने आचरण की शुद्धि और चरित्रवानता पर जोर दिया। उनके योग में संयम और सदाचार का बहुत महत्व था । कबीर और अन्य संत कवियों की शिक्षाओं में मुख्यतः हठयोग पर बल, नारी से विमुखता, कुंडलिनी जाग्रत करने की क्रिया का आधार भी नाथ योगियों का ही है। आचार्य द्विवेदी जी ने लिखा है - "इसने परवर्ती संतों के लिए श्रद्धाचरण प्रधान पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी।" परवर्ती हिंदी साहित्य में चरित्रगम दृढ़ता, आचरण - शुद्धि और मानसिक पवित्रता का जो स्वर सुनाई पड़ता है, उसका श्रेय भी इसी साहित्य को ही है।

4.6 रासो साहित्य

आदिकाल का काव्य प्रबंध काल रूप में मुख्य रूप से मिलता है। ये ग्रंथ 'रासो' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आदिकाल में वीरगाथात्मक, धार्मिक तथा श्रृंगारिक तीनों प्रकार के काव्य 'रासो' या 'रास' नाम से लिखे गए। वीरगाथात्मक रासो ग्रंथों की श्रेणी में पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, परमाल रासो, विजयपाल रासो एवं खुमाण रासो आते हैं, जबकि धार्मिक रासो काव्य में चंदनबाला रास, भरतेश्वर बाहुबलि रास, उपदेश रसायन रास आते हैं। श्रृंगारिक रचनाओं में संदेश रासक तथा बीसलदेव रासो प्रमुख हैं। इनमें सभी रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। ये कृतियां मुख्यतः चारण कवियों द्वारा रचित हैं । इनका लक्ष्य आश्रयदाता राजा की प्रशस्ति करना था। इसी कारण इन कृतियों में कल्पना का बाहुल्य है तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। इनमें ऐतिहासिकता का अभाव पाया जाता है।

- रासो शब्द की व्युत्पत्ति

रासो शब्द का प्रयोग मूलतः ब्रजभाषा तथा राजस्थानी में हुआ। इसे रासक, रास, रासा, रासऊ, रसायन, रासु आदि नामों से भी पुकारा जाता है। डॉ. दशरथ शर्मा इन शब्दों को एक-दूसरे का पर्याय मानते हैं। किंतु नरोत्तम स्वामी की मान्यता है कि वीर रस प्रधान रचना 'रासो' है तथा वीर रसेतर रचनाओं को 'रास' कहा जाता है। आचार्य शुक्ल 'रसायन' से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। गार्सा द तासी ने 'राजसूय से उत्पत्ति स्वीकार की। गौरीशंकर ओझा संस्कृत के 'रास' या 'रासक' से उत्पत्ति मानते हैं। रामचंद्र वर्मा 'रहस्य' से मानते हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 'रासक' शब्द को इसकी व्युत्पत्ति का आधार मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि रसपूर्ण होने के कारण ये रचनाएं 'रासो' कहलाई। आचार्य द्विवेदी मानते हैं कि 'रासो' तथा 'रासक' पर्याय हैं और वह मिश्रित गेय रूपक हैं। हिंदी साहित्य कोश में दो रूपों का संकेत किया गया है। (1) गीत नृत्यपरक (2) छंद वैविध्यपरक। रासो काव्य के वैविध्य को देखते हुए काव्य-विषय को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

1. वीरगाथात्मक रासो काव्य
2. श्रृंगारपरक रासो काव्य
3. धार्मिक एवं उपदेशमूलक रासो काव्य

इनका विस्तृत विवेचन हम निम्न पक्तियों में कर सकते हैं-

1. **वीरगाथात्मक रासो काव्य** - आदिकाल की सर्वप्रमुख विशेषता वीररस युक्त काव्य ग्रंथों की रचना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तो इसी विशेषता के कारण इस काल को 'वीरगाथा काल' नाम दिया है। वस्तुतः इस प्रकार की रचनाओं का श्रेय चारण या भाटों को दिया जाता है, जिन्होंने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में काव्य लिखे। ये शौर्यगाथा एवं प्रशस्तियां हैं, इसी कारण काल्पनिक हैं तथा वास्तविकता का अभाव है।

इन ग्रंथों की प्रामाणिकता पर भी विद्वानों को संदेह है। इनमें कई कृतियां उपलब्ध ही नहीं हैं। जैसे परमाल रासो और हम्मीर रासो । प्राकृत पैंगलम में उपस्थित आठ छंदों के आधार पर ही 'हम्मीर रासो' को रासो कृति स्वीकार किया गया। इसी प्रकार 'परमाल रासो का प्रकाशन भी आल्हा गायकों द्वारा गाए गए पद्यों के आधार पर किया गया। समय-समय पर इन ग्रंथों की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न लगाए गए। कभी रचनाकाल तो कभी भाषा के कारण ये रचनाएं कटघरे में रहीं। इन ग्रंथों के कुछ अंशों को प्रामाणिक तथा कुछ को प्रक्षिप्त अंश माना गया। कुछ प्रमुख रासों ग्रंथों का वर्णन इस प्रकार है-

(क) पृथ्वीराज रासो - चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो रासो काव्य परंपरा का श्रेष्ठ ग्रंथ है। इसे महाकाव्य स्वीकार किया गया है। चंदबरदाई ने दिल्ली के शासक पृथवीराज की प्रशस्ति में यह ग्रंथ लिखा है। इसकी प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न है। किंतु यह श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसे हिंदी का प्रथम महाकाव्य भी स्वीकार किया जाता है। यह एक चरितकाव्य है, जिसके अंतर्गत पृथ्वीराज चौहान का जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है। कवि ने महाकाव्य के नियमों का पालन करते हुए शास्त्रीय दृष्टि से इसकी रचना की है जैसे मंगलाचरण, विनय, सज्जन प्रशंसा, रचना का उद्देश्य आदि। इस ग्रंथ के चार संस्करण मिलते हैं। भावपक्ष की दृष्टि से इसमें मार्मिक प्रसंगों का स्वाभाविक वर्णन हुआ है-

एक उदाहरण दृष्टव्य है

थकि रहे सूर कौलिग गिगन, रगन-मगर भई श्रोन धर।
हदि हरषि वीर जग्गे हुलस, हुरेउ रंगि नवरत्त वर ।।

उक्त ग्रंथ में वर्णन प्रधानता है। युद्ध वर्णन, विवाह वर्णन, नगर-वर्णन तथा नखशिख वर्णन का कुशल चित्रण हुआ है । अलंकारों का भी व्यापक प्रयोग है। छंद की दृष्टि से वैविध्य है। राजस्थानी बोली का प्रयोग है, जिसे पिंगल कहा गया है। वस्तुतः इसकी भाषा में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी तथा ब्रजभाषा के शब्दों का सुंदर सम्मिश्रण दृष्टव्य है। काव्य शैली की दृष्टि से ओज और शक्ति प्रदर्शन को प्रमुखता है।

इस ग्रंथ को अप्रमाणिक मानने वाले विद्वानों में आचार्य शुक्ल, हीराचंद ओझा, डॉ. रामकुमार वर्मा प्रमुख हैं। वे अपने मत के पक्ष में पृथ्वीराज के कवि जयानक कृत 'पृथ्वीराज विजय' का उल्लेख करते हैं। इस ग्रंथ को प्रमाणिक मानने वाले विद्वानों में मिश्रबंधु, श्यामसुंदर दास हैं। इनका तर्क है कि भाषा में आए प्रभावों के संबंध में उनका कथन है कि अत्यधिक प्राचीन होने के कारण तथा समय-समय पर विविध कवियों द्वारा गाया जाने के कारण इनकी भाषा में परितर्वन आ गया। इसके अप्रमाणिक होने का एक कारण इसके चार अलग-अलग संस्करण प्राप्त होना है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि यह एक अर्धप्रमाणिक रचना है, जिसके रचयिता का मूल उद्देश्य काव्य रचना करना था, इतिहास रचना नहीं।

(ख) परमाल रासो - इस कृति को 'आल्हा खंड' के नाम से भी जाना जाता है। परमाल रासो लोकगीत शैली में लिखा गया एक वीरकाव्य है। इस कृति के रचयिता जगनिक थे जो परमार्दिदेव के आश्रित थे। परमार्दिदेव का ही दूसरा नाम परमाल मिलता है। इसी कारण इस कृति का नाम 'परमाल रासो रखा गया। इसमें परमाल के दो सामंतों आल्हा और ऊदल के वीर चरित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। वीरभाव का जितना प्रभावशाली रूप इस कृति में दृष्टिगत होता है उतना अन्य में नहीं। यह ग्रंथ 36 खंडों में विभक्त है । कवि ने छंदों का व्यापक प्रयोग किया है। इसकी गेयता के कारण इसे लोकगाथा की शैली में रखा

जाता है। इसकी भाषा व्रज है। चार्ल्स इलियट ने इसे 'आल्हा खंड' के रूप में प्रकाशित कराया। इसकी प्रामाणिकता को लेकर भी संदेह है।

(ग) खुमान / खुमाण रासो - इसके रचयिता 'दलपति विजय' है। इस काव्य में मेवाड़ के महाराजाओं बप्पा रावल से महाराजा राजसिंह तक का विस्तृत वर्णन है। इस ग्रंथ की भाषा डिंगल है। इसकी घटनाएं काल्पनिक हैं तथा उनमें अलौकिकता पाई जाती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह ग्रंथ खुमाण की वंश परंपरा का वर्णन करने के उद्देश्य से लिखा गया बाद में इसमें प्रक्षिप्त अंश जुड़ते चले गए।

(घ) हम्मीर रासो - यह ग्रंथ कवि शारंगधर द्वारा प्रणीत हैं। यह रचना उपलब्ध नहीं है, किंतु विविध साहित्य के इतिहासों में इस कृति का उल्लेख मिलता है। हम्मीर रासो के केवल आठ पद्य (प्राकृत पैंगलम) में विद्यमान हैं। इसकी भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव है। इस कृति के उपलब्ध न होने के कारण इसकी प्रामाणिकता पर संदेह है। इसके रचयिता के नाम पर भी प्रश्नचिह्न लगया जाता है।

(ङ) विजयपाल रासो- इस कृति के रचयिता नल्हसिंह हैं। यह एक चरित-काव्य है, जिसके नायक विजयपाल हैं। नल्हसिंह इनके आश्रित कवि हैं। अब तक इस कृति के 42 छंद ही प्राप्त हुए हैं। इसमें विजयपाल के शौर्य और पराक्रम का वर्णन है। काव्य रूप की दृष्टि से यह प्रबंधकाव्य है। इसकी भाषा ब्रज है। इस रचना की प्रमाणिकता पर भी संदेह है।

उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इन रचनाओं का मूल उद्देश्य चरितनायक की वीरता का गुणगान करना है।

2. श्रृंगारपरक रासो काव्य- इन रचनाओं में वीर रस तो है, पर श्रृंगार की अतिशयता है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण है। इस वर्ग में दो प्रमुख कृतियां हैं - संदेशरासक तथा बीसलदेव रासो। इन रचनाओं की विशेषता है कि इन दोनों कृतियों में संदेश - परंपरा का निर्वाह किया गया है।

संस्कृत साहित्य में कालिदास तथा परवर्ती भक्ति साहित्य में जायसी में यही परंपरा मिलती है। इन कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है -

(क) संदेश रासक - यह अपभ्रंश भाषा में रचित है। इसे अब्दुल रहमान ने लिखा है। इसमें विरहिणी नायिका का चित्रण है जिसका पति खंभात चला जाता है। वह पथिक के माध्यम से संदेश देती है, किंतु अंततः उसका पति लौट आता है। इस प्रकार कार्यसिद्धि की कामना करते हुए कृति समाप्त की है। यह खंडकाव्य है तथा छंदों की भरमार है। श्रृंगार के विरह पक्ष का सजीव अंकन हुआ है। कवि ने संदेश परंपरा का निर्वाह हिंदी साहित्य का किया है।

(ख) बीसलदेव रासो - नरपति नाल्ह द्वारा रचित यह कृति भी श्रृंगारिक है। इसका चरित नायक विग्रहराज तृतीय है। विग्रहराज (बीसदेव) तथा भोज परमार की पुत्री राजमती के विवाह एवं वियोग का वर्णन है। राजमती की वाक्पटुता से रुष्ट बीसलदेव उड़ीसा चला जाता है, तदुपरांत नायिका पंडित द्वारा संदेश देती है। तत्पश्चात पुनर्मिलन होता है। यह रचना चार खंडों में विभक्त है तथा कुल 128 छंद हैं। इसमें आदि से अंत तक एक ही छंद का निर्वाह हुआ है। इसकी शैली वर्णात्मक है तथा यह गेय काव्य रूप में है। इसमें भी संदेश परंपरा है। भाषा की दृष्टि से इसमें अपभ्रंश के साथ पुरानी हिंदी की झलक भी मिलती है। श्रृंगार का सफल निरूपण किया गया है।

- **रासो काव्य की विशेषताएं**

रासो काव्य मूलतः राजस्थान के शासकों के आश्रित चारण कवियों द्वारा लिखे गए। इन काव्य ग्रंथों में इतिहास और कल्पना का सम्मिश्रण है। किंतु ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा नहीं हो सकी है। इसका एक कारण वर्णनात्मकता भी है। वर्णन प्रधान होने के कारण इन कवियों को सहज ही काल्पनिक घटनाओं और अत्युक्तियों का सहारा लेना पड़ता था। वस्तुतः ये ग्रंथ काव्यग्रंथ थे, अतः कल्पना का समावेश होना स्वाभाविक ही था। रासो काव्य के रचयिताओं ने अपने कथानक

का प्रारंभ तो ऐतिहासिक घटनाओं से किया है। परंतु चरित नायक के अलौकिक कार्यों का उल्लेख करने हेतु काल्पनिक घटनाओं का अंकन किया है रासो काव्य का प्रतिपाद्य विषय आश्रयदाता राजा के शौर्य और वीरता का यशोगान था। कवियों ने अपने चरित नायकों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। इन कृतियों में शृंगार और वीर रस दोनों का सुंदर परिपाक हुआ है। श्रृंगार के दोनों पक्षों का अंकन, नखशिख वर्णन, संदेश परंपरा निर्वाह, विरह में चित्रण के साथ-साथ वीर रस का अतिरंजित वर्णन प्रमुख है। रासो काव्य में प्रबंध एवं मुक्तक दोनों ही प्रकार के काव्यरूप दृष्टव्य हैं। पृथ्वीराज रासो तथा विजयपाल रासो प्रबंध काव्य की कोटि में है। वीसलदेव रासो में एक ही छंद का प्रयोग है। 'उपदेश रसायन रास मुक्तक काव्य है। इसमें नीति एवं धर्मोपदेश के पद हैं जबकि लोकगीत शैली में 'परमाल रासो' की रचना हुई। इस काव्य ग्रंथ को आल्हा शैली में रचित कहा गया है।

कला पक्ष

अभिव्यंजना पक्ष के अंतर्गत रासो काव्यों में भाषा वैविध्य, उसमें प्रयुक्त अलंकारों तथा छंदों का विवेचन करेंगे। रासो काव्यों में भाषा के विविध रूप पाए जाते हैं। कवियों ने काव्य में डिंगल या पिंगल भाषा में कठोर एवं द्वित्वप्रधान शब्दों का प्रयोग किया है। साहित्यिक राजस्थानी भाषा का प्रयोग 'डिंगल' के नाम से तथा ब्रजभाषा के साहित्यिक रूप को पिंगल कहते थे। डिंगल भाषा पर संस्कृत, अरबी, फारसी, प्राकृत, पंजाबी, ब्रज तथा अपभ्रंश का भी प्रभाव है। द्वित्व प्रधान वर्गों का प्रयोग भी बहुत स्थानों पर हुआ है। डिंगल एवं पिंगल के अतिरिक्त अन्य बोलियों एवं अन्य विविध भाषाओं का सम्मिश्रण है। व्याकरण की शुद्धता का प्रायः अभाव मिलता है। कई स्थानों पर कर्कश शब्दों का भी प्रयोग है, इसका कारण यह है कि वे उत्साह का संचार करना चाहते थे। काव्य में अलंकार का अधिक एवं सटीक प्रयोग किया गया है। अलंकार वस्तु तथा रूप की तीव्र व्यंजना

करने में पूर्णतया सक्षम हैं। इन कवियों ने कहीं भी पांडित्य-प्रदर्शन की चेष्टा नहीं की है। अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन इनकी विशेषता है।

मनहुं कला ससिभान, कला सोलह सी बन्निय ।
बल बेस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय ।।

इन पंक्तियों में पद्मावती के सौंदर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण है। रासो काव्यों में छंदों हिंदी साहित्य का आदिकाल का बहुमुखी प्रयोग मिलता है। इन छंदों में दूहा, चउपइ, गाहा या गाथा, रोला, कुंडलियां उल्लाला पद्वरि आदि प्रमुख है। छंदों में प्रवाह एवं गतिशीलता है

स्वप्रगति परीक्षण

नीचे दिए गए प्रत्येक कथन को ध्यानपूर्वक पढ़ें और सत्य अथवा असत्य का चयन करें।

प्रश्न: 1. 'रासो' शब्द का प्रयोग केवल हिंदी भाषा में हुआ है।

प्रश्न: 2. 'पृथ्वीराज रासो' की रचना चंदबरदाई ने की थी।

प्रश्न: 3. रासो काव्य में केवल वीर रस का प्रयोग हुआ है, शृंगार रस का नहीं।

प्रश्न:4. रासो काव्यों में डिंगल और पिंगल भाषा का प्रयोग मिलता है।

4.7 लौकिक साहित्य

आदिकाल की एक प्रवृत्ति लौकिक साहित्य की भी थी जिसका साहित्य इन प्रवृत्तियों से इतर था। इस साहित्य के अंतर्गत जनता के मनोरंजन हेतु अमीर खुसरो द्वारा मुकरियों तथा पहेलियों का सृजन किया गया। दूसरी और भक्ति एवं शृंगार की प्रकृति को लेकर विद्यापति ने साहित्य रचना की। धनपाल भी इसी श्रेणी के कवि हैं| आदिकाल में खड़ी बोली में काव्य की रचना करने वाले अमीर खुसरो ही सर्वप्रथम कवि थे। उन्हें उर्दू भाषा का भी प्रथम कवि माना जाता है। इसके अतिरिक्त उन्हें अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं का भी अच्छा

ज्ञान था। अनेक मसनवियों का प्रणयन उन्होंने फारसी में किया है। अमीर खुसरो ने पहेलियों, मुकरियों, खालिक बारी, गजल आदि की रचना की। उन्होंने अपने साहित्य में खड़ी बोली को काव्य भाषा का रूप प्रदान करने का ऐतिहासिक कार्य किया। उनकी पहेलियां अत्यंत प्रसिद्ध हैं : -

एक थाल मोती से भरा, सबके सिर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाल फिरे, मोती उससे एक न गिरे।

(उत्तर - आकाश)

एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है : -

बीसों का सिर काट दिया
ना मारा ना खून किया ।

(उत्तर - नाखून)

अमीर खुसरो ने हास्य विनोदमयी भाषा में रचना की। उनकी भाषा जनसाधारण की भाषा थी ।

लौकिक साहित्य की श्रेणी में विद्यापति प्रमुख कवि थे। विद्यापति को कृष्ण भक्ति में काव्य-रचना करने वाला प्रथम कवि माना जाता है। उन्होंने अपने अधिकांश ग्रंथों की रचना संस्कृत में की। उनके संस्कृत ग्रंथ 11 हैं, जबकि हिंदी में तीन ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है। कीर्तिलता, कीर्तिपताका तथा पदावली। इनमें पहले दोनों चरितकाव्य तथा पदावली शृंगारिक रचना है। कीर्तिलता एक चरित काव्य है जिसमें कवि ने राजा कीर्तिसिंह का वर्णन किया है। यह चार पल्लवों में विभक्त है। यह कवि की प्रथम रचना मानी जाती है। कवि ने इस रचना को पुण्यप्रदायिनी के रूप में वर्णित किया है। इसमें भृंग-भृंगी संवाद के

द्वारा कथा को आगे बढ़ाया है। इसकी भाषा मैथिल से प्रभावित साहित्यिक अपभ्रंश है। कहीं-कहीं गद्य भी दृष्टिगोचर होता है । विद्यापति की पदावली भी मैथिल भाषा में रचित पदों का संग्रह है। इसके गीतों का प्रचार चैतन्य महाप्रभु ने किया। पदावली में राधाकृष्ण के प्रेम का शृंगारिक चित्रण किया है। इस ग्रंथ के भाव और शैली पर 'जयदेव' के 'गीतगोविंद' का प्रभाव स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है। अपने पदों में विद्यापति ने राधा के सौंदर्य, नखशिख वर्णन, अभिसार, मान तथा राधा कृष्ण की प्रणयलीला का सुंदर अंकन किया है। कवि ने संयोग एवं वियोग दोनों का सशक्त चित्रण किया है। यद्यपि इस गीतिकाव्य के नायक राधा-कृष्ण हैं, किंतु यह रचना| भक्ति - रचना नहीं है। वस्तुतः विद्यापति ने आदिकालीन प्रवृत्ति से अलग हटकर काव्य रचना की जिसमें इत्तिवृत्तात्मकता का अभाव है। साथ ही परवर्ती कवियों के लिए कृष्ण भक्ति काव्य रचना का मार्ग प्रशस्त किया। रीतिकालीन कवियों पर उनका प्रभाव सहज ही दृष्टिगोचर होता है। साथ ही मुक्तक काव्य-परंपरा के प्रवर्तन का श्रेय भी उन्हें प्राप्त है।धनपाल कृत 'भविसयत्तकहा' एक कथाकाव्य है। यह एक प्रबंध काव्य है। इसकी विषयवस्तु अत्यंत व्यापक है। इसमें मुख्य कथा के साथ प्रासंगिक कथाओं का भी समावेश किया गया है। यह काव्य ग्रंथ कडवकबद्ध शैली में रचित है। इसमें प्रकृति वर्णन एवं नखशिख वर्णन का सुंदर अंकन किया गया है। वीर, शृंगार एवं शांत रस का सुंदर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। इस कृति की भाषा साहित्यिक अपभ्रंश मानी जाती है। राहुल सांकृत्यायन ने इनकी भाषा को 'पुरानी हिंदी' भी स्वीकार किया है। इसमें मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी प्रयोग है तथा लोकभाषा के शब्दों का भी समावेश है। कुल मिलाकर यह एक सशक्त चरित्र काव्य है। कवि ने साधारण व्यक्ति को नायक बनाकर बंधे-बंधाए शास्त्रीय विधान से अलग काव्य सृजन किया।

4.8 सार संक्षेप

आदिकालीन काव्य प्रवृत्तियाँ हिंदी साहित्य के प्रारंभिक दौर का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिनमें धार्मिक, वीरगाथात्मक और तांत्रिक काव्य शैलियाँ मुख्य रूप से शामिल हैं। इस काल में बौद्ध, जैन और नाथ संप्रदाय के कवियों ने साधना और भक्ति को आधार बनाकर रचनाएँ कीं। सिद्ध संप्रदाय के कवियों ने तांत्रिक विधियों और सहज साधना के माध्यम से रहस्यमय और प्रतीकात्मक भाषा में अपने विचार प्रकट किए। इनके दोहे और पद सरल होते हुए भी गूढ़ अर्थ लिए हुए हैं। जैन कवियों ने संयम, अहिंसा और धर्म की महत्ता पर जोर दिया, जबकि नाथ संप्रदाय के कवियों ने योग और साधना पर आधारित काव्य रचा। वीरगाथा काव्य में राजाओं और योद्धाओं की वीरता का वर्णन किया गया, जिसमें पृथ्वीराज रासो जैसे प्रसिद्ध ग्रंथ शामिल हैं। इस काल के काव्य में अतिशयोक्ति और आदर्शों का चित्रण है, जिसमें समाज और धर्म के प्रति आस्था का भाव देखा जा सकता है। आदिकालीन काव्य हमें उस समय की साहित्यिक प्रवृत्तियों और सामाजिक दृष्टिकोण को समझने का अवसर देता है।

4.9 मुख्य शब्द

- **वीरगाथा** - वीरों के शौर्य का वर्णन करने वाला काव्य।
- **चारण** - राजाओं की वीरता का गुणगान करने वाले कवि।
- **प्रबंध काव्य** - कथा का विस्तार से वर्णन करने वाला काव्य।
- **अपभ्रंश**- संस्कृत से विकसित सरल भाषा।
- **वीर रस**: - वीरता और साहस को दर्शाने वाला रस।
- **रासो** - राजस्थानी वीरगाथाओं का गेय काव्य।
- **प्रशस्ति** - राजाओं की प्रशंसा में लिखा काव्य।
- **यशोगान** - किसी व्यक्ति के यश का गुणगान।
- **इतिवृत्त** - ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन।

- **धीरता** - वीरों की स्थिरता और संयम।

4.10 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. असत्य

उत्तर: 2. सत्य

उत्तर: 3. असत्य

उत्तर: 4. सत्य

4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी संचयन - संपादक: डॉ. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
2. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास - डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
3. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. डेविड रुबिन (अनुवाद: डॉ. राजेंद्र मिश्र), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2005
4. आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. रमेश चंद्र शाह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
5. हिंदी साहित्य के आयाम - डॉ. शंभुनाथ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015

4.12 अभ्यास प्रश्न

1. आदिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।
2. वीरगाथा काव्य क्या है? इसके प्रमुख उदाहरणों पर प्रकाश डालिए।

3. "प्रबंध काव्य" और "वीर रस" की विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
4. आदिकालीन काव्य में चारणों की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
5. रासो काव्य की विशेषताओं का वर्णन करते हुए इसके महत्व पर चर्चा कीजिए।

ब्लॉक - II

इकाई - 5

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल

5.1 प्रस्तावना

5.2 अध्ययन के उद्देश्य

5.3 भक्ति का अर्थ एवं स्वरुप

5.4 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

5.5 भक्तिकालीन साहित्य पर परिस्थितियों का प्रभाव

5.6 सार - संक्षेप

5.7 मुख्य शब्द

5.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.10 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल 14वीं शती से लेकर 17वीं शती तक का वह समय है जब भारतीय समाज में भक्ति आंदोलन ने व्यापक रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। इस काल में धर्म, समाज और राजनीति की विसंगतियों के बीच संतों और भक्तों ने एक ऐसे नए प्रकार के धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया, जो न केवल धार्मिक आस्थाओं की पुनर्स्थापना की दिशा में था, बल्कि समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ एक जागरूकता लाने का कार्य भी कर रहा था। भक्तिकाव्य ने सामाजिक एकता और समरसता की भावना को प्रबल किया, जिसमें जाति-व्यवस्था, अंधविश्वास और धार्मिक कट्टरता के खिलाफ संघर्ष किया गया।

भक्तिकाव्य की रचनाएँ ईश्वर के प्रति प्रेम, भक्ति और समर्पण की भावनाओं को व्यक्त करती हैं। संतों ने अपने साहित्य के माध्यम से आम जनमानस को भक्ति के सरल और सहज मार्ग से परिचित कराया। भक्तिकाव्य में खासकर राम, कृष्ण, शिव, और अन्य देवताओं की उपासना के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति की संभावना को उजागर किया गया। इस काल में निर्गुण और सगुण भक्ति दोनों ही रूपों का महत्व बढ़ा। निर्गुण भक्ति का मतलब था उस परम सत्य या ब्रह्म के प्रति प्रेम और समर्पण, जिसे किसी रूप में नहीं बांधा जा सकता। वहीं सगुण भक्ति में विशिष्ट देवताओं के स्वरूप की पूजा की जाती थी। इस प्रकार भक्तिकाव्य ने धार्मिक विविधता और सांस्कृतिक एकता का मिश्रण प्रस्तुत किया।

5.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हिंदी साहित्य के भक्तिकाल की प्रमुख भक्ति अवधारणाएँ और उनके प्रभाव।
- भक्तिकाव्य के स्वरूप, भक्ति भाव और उनके सामाजिक, धार्मिक और ऐतिहासिक संदर्भ में योगदान।
- भक्तिकाव्य की विशेषताएँ, भक्ति के विभिन्न रूप और इस काल में भक्ति आंदोलन के प्रमुख विचारकों और कवियों के दृष्टिकोण।

5.3 भक्ति का अर्थ एवं स्वरुप

भक्ति शब्द का अर्थ विभिन्न शब्दकोषों में विभाजन', 'अनुराग', पूजा, उपासना' आदि दिया गया है। भक्ति शब्द की निष्पत्ति भज धातु से हुई है, जिसका अर्थ है सेवा करना। लेकिन इसका अर्थ सिर्फ सेवा' शब्द तक ही सीमित नहीं है। भक्ति में ईश्वर के प्रति भक्त, पूजा, और अर्पण भी शामिल है। दूसरे शब्दों में

भक्ति ईश्वर के प्रति भक्त के प्रेम की अभिव्यक्ति है। नारद रचित भक्ति सूत्र में भक्ति की यही परिभाषा दी गई है :

'सा त्वसिमन् परमप्रेमरूपा

अमृतस्वरूपां च'

अर्थात वह भक्ति भगवान के प्रति परम प्रेमरूपा है और अमृतस्वरूप है। अभिप्राय है कि हिंदी साहित्य का भक्तिकाल ईश्वर के प्रति परम प्रेम और जिसका स्वरूप अमृत के समान हो उसे ही भक्ति कहा गया है।

शांडिल्य रचित भक्ति सूत्र के अनुसार "सा परानुरक्तिरीश्वरे" अर्थात ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति ही भक्ति है। इस प्रकार भक्ति वस्तुतः ईश्वर के प्रति गहरे प्रेम की अभिव्यक्ति का ही दूसरा नाम है। वल्लभाचार्य के अनुसार भगवान में माहात्म्यपूर्वक सुदृढ़ और सतत स्नेह ही भक्ति है । मुक्ति का इससे सरल उपाय नहीं।

उपर्युक्त परिभाषाओं में शाब्दिक दृष्टि से अंतर होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से पर्याप्त एकता है। हृदय और बुद्धि दोनों का समर्पण स्वीकार किया गया है। आचार्य शुक्ल की परिभाषा - "श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है" - में उपर्युक्त सभी मतों का समन्वय हो जाता है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी भक्ति में श्रद्धा और प्रेम दोनों तत्वों का सम्मिश्रण होना अनिवार्य है। दोनों में से किसी भी एक के न होने पर वह कोरी श्रद्धा व कोरे प्रेम का रूप धारण कर लेगी तथा उस स्थिति में उसे भक्ति कहना उचित नहीं होगा।

भक्ति को ईश्वर की प्राप्ति का सबसे सुगम साधन माना गया है। वस्तुतः स्मरण, भजन, कीर्तन, श्रवण, ध्यान आदि भक्ति के ही विभिन्न मार्ग हैं। भारतीय धर्म साधना में भक्ति-भावना का उदय कब और क्यों हुआ इस विषय पर विभिन्न विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। पाश्चात्य विद्वान वेवर, कीथ, ग्रियर्सन आदि इसे ईसाई धर्म की देन बताते हैं। ग्रियर्सन महोदय का मत है कि ईसा की दूसरी-तीसरी शती में कुछ ईसाई मद्रास में आकर बस गए थे, जिनके

प्रभाव से भक्ति का विकास हुआ। एक अन्य पाश्चात्य विद्वान ने कृष्ण को क्राइस्ट का ही रूपांतर घोषित करते हुए अपनी कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। हमारे अनेक भारतीय विद्वानों- श्री बालगंगाधर तिलक, श्री कृष्ण स्वामी आयंगर, डॉ. एच. राय चौधरी आदि ने उपर्युक्त मतों का खंडन सुदृढ़ आधारों पर करते हुए भक्ति का मूल उद्गम प्राचीन भारतीय स्रोतों में सिद्ध किया है। इस संदर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन दृष्टव्य है- "मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना ही था तो पहले उसे सिंध में, फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में ।" द्विवेदी जी के विचार से भक्ति आंदोलन के विकास का श्रेय दक्षिण के आलवार भक्तों को है जिनकी संख्या 12 मानी गई है। यह भी विचित्र बात है कि राम और कृष्ण का अवतार उत्तर भारत में हुआ जबकि उनके प्रति भक्ति-भावना का विकास ठेठ दक्षिण में आलवारों द्वारा हुआ।

भागवत पुराण में भक्ति के नौ प्रकार के साधनों का उल्लेख है - 1. श्रवण, 2. कीर्तन, 3. स्मरण, 4. पादसेवन, 5. अर्चना, 6. वंदना, 7. दास्य 8. सख्य और 9. आत्मनिवेदन अथवा शरणागति।

1. श्रवण - ईश्वर के नाम, गुण और लीलाओं को सुनना श्रवण कहलाता है। पुराणों में कहा गया है कि ईश्वर के नाम गुण श्रवण करके मनुष्य भवपाश से मुक्त हो सकता है।
2. कीर्तन - व्याख्यान, प्रवचन, स्तवन, कथा ये सब कीर्तन के ही विविध रूप है। विष्णु पुराण में कहा गया है "...वही सद्गति कलियुग में भगवान केशव के नाम गुण कीर्तन से ही प्राप्त होती है ।"
3. स्मरण - ईश्वर के नाम, गुण एवं लीलाओं का स्मरण करना। गरुड़ पुराण के अनुसार "जो गुरुतर पाप अनेकानेक बार गंगाजल में और पुष्कर जल में स्नान करने से नष्ट होता है, वह भगवान के स्मरण मात्र से नष्ट हो जाता है।

4. पादसेवन - पुराणों के अनुसार प्रभु के चरणों की सेवा जो लक्ष्मी का आदर्श है उससे सभी पाप विच्छिन्न हो जाते हैं।
5. अर्चना पूजा, अर्चना, उपासना की प्राचीन विधि हैं तथा पुराणों के अनुसार भगवान विष्णु की पूजा करने से सब पाप दूर हो जाते हैं।
6. वंदना - भगवान की वंदना करना अर्थात प्रणाम करना। महाभारत के शांतिपर्व में कहा गया है कि जो भक्तजन नीलवर्ण पीतांबर धारी, अच्युत गोविंद की वंदना करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं होता।
7. दास्य - अपने को भगवान का सेवक समझना अर्थात ईश्वर के प्रति सेवा भाव ही दास्य भाव है।
8. सख्य - ईश्वर को अपना सखा, मित्र समझना। अर्जुन सखाभाव के आदर्श हैं और सूरदास के काव्य में इस भाव की प्रधानता है।
9. आत्मनिवेदन - ईश्वर के चरणों में अपने को पूर्णतः समर्पित कर देना अर्थात उनकी शरण में चले जाना ही आत्मनिवेदन या शरणागति है। भक्ति का यह प्रधान साधन रहा है।

भक्ति भाव मुख्यतया 5 रूपों में व्यक्त हुआ - 1. दास्य भाव 2. सख्य भाव, 3. वात्सल्य | भाव, 4. माधुर्य भाव एवं 5. शांत भाव । इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

1. दास्य भाव - इसमें भक्त स्वयं को ईश्वर का दास मानता है। साथ ही ईश्वर का स्मरण, कीर्तन एवं लीला गायन दास रूप में करता है। तुलसीदास की भक्ति दास्य भाव की थी।
2. सख्य भाव - इसमें भक्त अपने को ईश्वर का सखा मानकर अपनी भावना व्यक्त करता है। सूरदास की भक्ति इसी श्रेणी की मानी जाती है ।
3. वात्सल्य भाव वे भक्त और भक्त कवि जिन्होंने कृष्ण के बाल रूप और बाल लीलाओं को अपनी भक्ति का आधार बनाया है, वहां भक्ति का

वात्सल्य भाव व्यक्त हुआ है। सूरदास के काव्य में वात्सल्य भाव की भक्ति व्यक्त हुई है।

4. माधुर्य भाव इसे कांता भाव या दाम्पत्य भाव भी कहते हैं। यह दो रूपों में हिंदी साहित्य का : व्यक्त हुई है। इसके संयोग एवं वियोग दोनों रूप पाए जाते हैं। चाहे कृष्ण की गोपियों का विरह भाव हो अथवा राम एवं कृष्ण की प्रेम लीला कबीर में भी 'दाम्पत्य भक्ति' मिलती है जब वे स्वयं को 'राम की बहुरिया' कहते हैं। मीराबाई के काव्य में भी भक्ति का यही रूप है, तथा सूफी कवियों में भी ऐसी भक्ति के दर्शन होते हैं।
5. शांत भाव - इस भक्ति में ज्ञान का मिश्रण है और भक्त ध्यान और ज्ञान द्वारा अपनी भक्ति व्यक्त करता है।

भक्ति का विधिवत उदय कब हुआ यह कहना मुश्किल है। परंतु जब से मनुष्य ने ईश्वर की कल्पना की और उसकी उपासना आरंभ की तब से भक्ति के कुछ लक्षण उसकी उपासना पद्धति में विद्यमान रहे हैं। वेदों, उपनिषदों में इसी कारण ईश्वर के अनुग्रह, प्रेम भाव तथा शरणागत वत्सलता मिलते हैं। पुराणों में ईश्वर के विभिन्न अवतारों तथा लीलाओं का वर्णन है। गीताकार भक्ति को ज्ञान और कर्म से भी श्रेष्ठ मानता है। भक्ति आंदोलन की शुरुआत का श्रेय वस्तुतः संत कवियों को है जिन्होंने जीव, जगत, ईश्वर, माया और भक्ति के प्रति अपनी भिन्न धारणा प्रस्तुत की। भक्ति के विकास में सूफी मत का भी योगदान रहा जिन्होंने अपने प्रेम मार्ग द्वारा ईश्वर के प्रति गहरी निष्ठा और भक्ति व्यक्त की।

भक्तिकाल एवं भक्ति का प्राकट्य

आदिकाल के बाद जो भक्ति की धारा बही, उस समय जिस साहित्य की रचना हुई उसे 'भक्तिकाल' नाम दिया गया है। क्योंकि इस काल में अधिकतर साहित्यिक रचनाएं भक्ति विषयक हैं, अतः इसे 'भक्तिकाल' कहना उचित ही है। इस काल

के कवि भक्त पहले हैं, कवि बाद में| भक्तों ने किसी साहित्यिक रचना करने के उद्देश्य से रचनाएं नहीं की, बल्कि उनके हृदय से निकले उद्गार ही काव्य के रूप में हमारे सामने विद्यमान हैं। उनके शब्दों में सच्ची निष्ठा, गहरा अनुराग और तीव्र भावनात्मक उद्वेग दिखाई देता है । भक्तिकाव्य में अहैतुकी भक्ति का प्रभाव अधिक है, जब भक्त मोक्ष की कामना छोड़ कर ईश्वर का प्रेम और उसकी कृपा प्राप्त करने को अपना लक्ष्य बना लेता है तो इसी भक्ति को 'निर्गुण' भक्ति कहते हैं।

वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा में कर्मकांडों की प्रधानता थी। अंधविश्वास, तांत्रिक क्रियाएं आदि ने धर्म में विकृतियां उत्पन्न कर दी थीं। तदुपरांत बौद्ध और जैन धर्म आंदोलन ने भक्ति की धारा को बदला, किंतु कालांतर में इनमें भी विकृतियां आ गईं। नाथों और सिद्धों ने धार्मिक सुधार का प्रयास किया। दक्षिण के आलवार और आडियार संतों की परंपरा का विकास ही भक्ति आंदोलन के उदय का कारण है । यहीं से भक्ति आंदोलन का उदय हुआ ।

5.4 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

1. ऐतिहासिक परिस्थितियां - पंद्रहवीं शती के आरंभ तक भारत में मुसलिम साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी, और परस्पर कलह में डूबे हिंदू राजा छुट-पुट विरोध करने में असमर्थ थे। यह काल भी युद्ध और अशांति का काल था। पहले लोदी और सैयद वंश, तत्पश्चात तुगलक वंश के शासकों ने शासन किया। सन् 1526 में मुगल वंश की स्थापना हुई । क्रमशः बाबर, हुमांयू, अकबर, जहांगीर, शाहजहां और औरंगजेब ने शासन किया। कुछ समय के लिए अफगान शासकों का भी शासन रहा । तुगलक वंश में शासन व्यवस्था कुरान और हदीस पर आधारित रही। सिकंदर लोदी ने धर्मांध शासन किया। मुगल शासकों ने केंद्रीय सत्ता की स्थापना की। जहां बाबर और हुमायूं ने कट्टरता से शासन किया, वहीं अकबर का शासन धार्मिक सद्भाव पर आधारित था। अकबर ने न्याय व्यवस्था,

भू-व्यवस्था, सैन्य व्यवस्था में व्यापक सुधार किए। अकबर ने हिंदुओं को भी पर्याप्त सम्मान दिया। इस प्रकार भक्तिकाल के आरंभिक दिनों में विदेशियों के आक्रमण से जहां उथल-पुथल का वातावरण रहा, वहीं शनैः शनैः उसमें स्थिरता आ गई। ऐसी परिस्थिति में भक्ति का साहित्य रचित हुआ।

2. सामाजिक परिस्थितियां - भक्तिकाल में समाज में जाति-पांति, ऊंच-नीच की भावना विद्यमान थी। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार, "सामाजिक दृष्टि से वर्तमान समय में जो जाति-व्यवस्था प्रचलित है, उसका निश्चित रूप इसी काल में निर्धारित हुआ। विवाहादि एवं खानपान के मामले में जो प्रतिबंध पहले से चला आ रहा था उसे और कठोर बनाया गया।" जाति व्यवस्था के कारण व्यक्ति के अंदर की प्रतिभा कुंठित रह जाती थी। जाति व्यवस्था ने जहां एक ओर समाज को टुकड़ों में विभक्त कर दिया था, वहीं इसके कारण राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास नहीं हो पाया। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, "दैनिक जीवन, रीति-रिवाज, रहन-सहन, पर्व-त्योहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन समाज सुविधासंपन्न और असुविधाग्रस्त दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग में राजा-महाराजा, सुलतान, अमीर, सामंत और सेठ - साहूकार आते थे, द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक, और घरेलू उद्योग-धंधों में लगी जनता आती थी। समाज में स्त्रियों की स्थिति शोचनीय थी। सती प्रथा का प्रचलन था। संयुक्त परिवार की परिपाटी प्रचलित थी। इसलाम की समानता की भावना ने यहां के दलित और अधिकार से वंचित जातियों को आकृष्ट किया। अधिक संख्या में लोगों ने इसलाम धर्म स्वीकार कर लिया। धीरे-धीरे हिंदू और मुसलमानों के बीच की दूरी घटने लगी। सामाजिक बुराइयों को दूर करने में संतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सूफी साधकों ने प्रेम भावना का प्रयोग किया। इन्होंने अपनीरचनाओं के माध्यम से सामाजिक भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया। हिंदी साहित्य का भक्तिकाल भक्तिकाल का समाज परिवर्तन के दौर का समाज

था। एक ओर रूढ़ियुक्त सामाजिक वर्ग परंपरा को बनाए रखने के पक्षधर थे तो दूसरी ओर प्रगतिशील सामाजिक वर्ग परिवर्तन चाहते थे। राजनीतिक स्थिति ने भी सामाजिक स्थिति को प्रभावित किया। भक्तिकाल के कवियों ने सामाजिक सुधार के लिए आंदोलन चलाया। उनका आंदोलन लोगों के विचार परिवर्तन का तथा लोगों के हृदय परिवर्तन का आंदोलन था।

3. धार्मिक परिस्थितियां - यह युग संप्रदायों, मतों और धर्मों के परस्पर विरोध का काल है। इस काल में धार्मिक कर्मकांडों को बढ़ावा मिला। पुरोहित वर्ग जनता का शोषण कर रहा था । दक्षिण से प्रारंभ हुई भक्ति की लहर उत्तर की ओर आ रही थी। इसलाम की बंधुत्व की भावना ने भी भक्ति को बढ़ाने में योग दिया। इस प्रकार रूढ़ियुक्त धर्म के स्थान पर सरल - साधारण धर्म की स्थापना हुई। धार्मिक क्षेत्र में इस काल में एक और बड़ा परिवर्तन आया, धीरे धीरे विभिन्न देवी-देवताओं के स्थान पर एक देव की पूजा की भावना बढ़ने लगी। निर्गुण उपासक संत हों या सगुण उपासक भक्त सभी ने एक ब्रह्म की उपासना पर बल दिया।

तत्कालीन उपदेशकों ने संप्रदायों की स्थापना की किंतु उनका उद्देश्य नवीन वर्ग बनाना नहीं था। वे समाज को एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे। सभी संतों की वाणियों को उन्होंने समान रूप से महत्व दिया। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में समन्वय की भावना का विकास होने लगा था। सूफी संप्रदाय के आगमन से हिंदू और मुसलमान करीब आने लगे थे। प्रेम भावना और लोकतत्व ने इस संप्रदाय को जनता में लोकप्रिय बना दिया। तत्कालीन शासकों ने धार्मिक क्षेत्र में समन्वय की भावना को बढ़ावा दिया। कई मुगल सम्राटों ने धार्मिक एकता की बात कही। अकबर ने दीन-ए-इलाही धर्म का प्रवर्तन किया। इस परिवर्तन के कारण कई सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ा गया।

4. सांस्कृतिक परिस्थितियां - भक्तिकाल में दो परस्पर भिन्न संस्कृतियों और विचारधाराओं की समन्वित संस्कृति मिलती है। एक ओर हिंदू संस्कृति अपनी

पूर्णता और प्राचीन परंपरा का दंभ लिए अपनी अस्तित्व रक्षा में प्रयत्नशील थी और दूसरी नवीन धार्मिक उन्माद से ओत-प्रोत मुसलिम संस्कृति उन पर हावी होना चाह रही थी। अपनी रक्षार्थ हिंदुओं ने सामाजिक बंधन को दृढ़ और संकीर्ण बना दिया। फलतः संकीर्णता के आवरण में धार्मिकता गौण हो गई। इस संकीर्णता का विरोध संत कवियों ने किया । इस विरोध को मिटाने हेतु समन्वय की भावना उभरी। इसलाम धर्मावलंबियों के आगमन से सांस्कृतिक हलचल हुई। रहन-सहन, मनोरंजन के साधन, शिक्षा, साहित्य, स्थापत्यकला, मूर्तिकला और चित्रकला में भी परिवर्तन आया। मुगलशासक कला और साहित्य की उन्नति में भी रुचि लेते थे। तुर्कों के आगमन से स्थापत्य का विकास हुआ। विदेशी और भारतीय शैली के मिश्रण से ही गुजराती और जौनपुरी शैली का विकास हुआ। भक्तिकाल में चित्रकला में बहुत उन्नति हुई। इसका कारण मुगल शासकों का प्रश्रय था। संगीत भारतीय जनजीवन का प्राण है। भक्तिकाल के कवि अपनी रचनाओं को गा-गाकर जनता तक पहुंचाते थे। हाथ से बनाए वाद्ययंत्रों का प्रयोग करते थे। इस प्रकार इस काल में भारतीय संस्कृति ने प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की।

5. साहित्यिक परिस्थितियां - साहित्य को पढ़कर ही हम समाज के स्वरूप को जान सकते हैं। लोगों के आचार-विचार का अनुमान लगा सकते हैं। साहित्यकार अपने सामने जो देखता है उसका वर्णन करता है। यद्यपि कल्पना का समावेश उसकी रचनाओं में जरूर होता है किंतु उसके साथ तत्कालीन सत्य भी जुड़ा रहता है भक्तिकाल में साहित्य की प्रवृत्ति बदल गई । इस युग में जितनी भी साहित्यिक रचनाएं हुईं वह ईश्वर भक्ति और सामाजिक समस्याओं से जुड़ी हैं। भक्त कवि किसी साहित्यिक कीर्ति के लिए रचनाएं नहीं करते थे, उनके हृदय से निकले उद्गार ही काव्य बन गए। दक्षिण में आलवार संतों की वाणियां एक अंत:स्रोत के रूप में बहती हुई 12वीं - 13वीं शती में आकर उत्तर भारत के विशाल क्षेत्र में प्रवाहित होने लगी। सामाजिक और धार्मिक बुराइयां भक्ति साहित्य के उदय

का कारण बनीं। भक्ति साहित्य में सभी प्रकार की बुराइयों एवं अंधविश्वासों का पर्दाफाश किया गया।

इस काल में अनुवाद का महत्वपूर्ण कार्य हुआ। बदांयूनी ने फारसी में रामायण और महाभारत का अनुवाद किया। शासक वर्ग के कारण फारसी साहित्य की उन्नति हुई। हिंदी के भक्त कवियों ने भक्ति संबंधी रचनाएं कीं। कबीर ने बीजक, जायसी ने पद्मावत, सूरदास ने सूरसारावली, नंददास ने रासपंचाध्यायी, तुलसीदास ने कवितावली, गीतावली एवं रामचरितमानस की रचना की । अब्दुर्रहीम खानखाना, बीरबल तथा टोडरमल हिंदी के श्रेष्ठ कवि थे । प्रायः सभी कवियों ने जनता की भाषा में ही अपनी बात कही। काव्य रूपों की दृष्टि से इस काल में विविधता पाई जाती है। इसमें प्रबंध काव्य, मुक्तक काव्य, सूक्ति काव्य, संगीत काव्य, नाटक कथाकाव्य आदि काव्यरूपों का प्रयोग किया गया। फारसी की मसनवी शैली का प्रयोग भक्ति काव्य की अपनी विशेषता है। सूफी कवियों ने इस शैली का प्रयोग किया तथा यहां की लोककथाओं को प्रबंध का आधार बनाया। ईरानी और भारतीय शैलियों का मिश्रित रूप सूफी काव्य की प्रमुख विशेषता है। इस प्रकार भक्तिकाल की साहित्यिक परिस्थिति में परिवर्तन होता रहा; विषयवस्तु, भाषा शैली तथा काव्य रूपों सभी में बदलाव हुआ।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न:1.भक्ति का अर्थ _____ है।

प्रश्न: 2. नारद रचित भक्ति सूत्र में भक्ति को _____ और _____ के रूप में वर्णित किया गया है।

प्रश्न: 3 भागवत पुराण में भक्ति के नौ प्रकार के साधनों का उल्लेख किया गया है, जिनमें से एक _____ है।

प्रश्न: 4 भक्तिकाल में _____ और _____ की सामाजिक स्थिति को विशेष रूप से संदर्भित किया गया है।

5.5 भक्तिकालीन साहित्य पर परिस्थितियों का प्रभाव

भक्तिकाल की विभिन्न परिस्थितियों का साहित्य पर अपरिहार्य प्रभाव पड़ा। यहां यह भी विचारणीय है कि भक्ति की धारा दक्षिण से उत्तर की ओर आई। विदेशी आक्रमण और नये शासक वंश की स्थापना से परिवर्तन का दौर शुरू हुआ। भारतीय जनता शासक वर्ग से असंतुष्ट थी। शहरी विकास के फलस्वरूप व्यापार की उन्नति हुई। समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास शुरू हुआ। भक्ति आंदोलन इन्हीं स्थितियों के परिणामस्वरूप शुरू हुआ। इसलाम धर्मावलंबी शासकों के कारण सामंतों की शक्ति घटी। इस प्रकार राजनीतिक परिस्थिति में परिवर्तन के फलस्वरूप भक्ति साहित्य के प्रारंभ और विकास के लिए उपयुक्त आधारभूमि मिली। भक्तिकालीन समाज की दशा शोचनीय थी। हिंदू और मुसलमान दो वर्ग बन गए थे। दोनों में परस्पर वैमनस्य था। ऊंच-नीच की भावना तथा कर्मकांड की अधिकता के कारण जनता में अशांति थी। ऐसे समय में लोगों को ऐसी राह की तलाश थी जिस पर चलकर वे इन बुराइयों से मुक्त हो सकें। ऐसे समय में भक्ति आंदोलन की लहर चली । भक्ति की भावधारा का विकास हुआ जिसका मूलमंत्र था "जातिपांती पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई" इस भक्ति में हृदय पक्ष को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया । बाह्य आचार-विचार को नकारा गया, सामाजिक व्यवस्थाओं ने भक्ति साहित्य को पनपने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जितने भी भक्त कवि हुए उन्होंने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन की बातें कहीं तथा लोगों को साधारण जीवन-यापन तथा हृदय की शुद्धता का मंत्र पढ़ाया। आपसी सद्भाव बढ़ाने के लिए भेदभाव पर चोट की गई। कवियों ने जनता में चेतना जगाने का महान कार्य किया। निर्गुणोपासक कवियों ने इसलाम की तरह एकेश्वरवाद पर बल दिया। उनका मत है कि ईश्वर की भक्ति से ही माया से मुक्ति संभव है। विदेश से आई धार्मिक विचारधारा ने भी भक्ति साहित्य को प्रभावित किया। सूफी संप्रदाय ने प्रेम को

आधार बनाया। सूफी कवियों ने भारत प्रचलित लौकिक कथाओं को आधार बनाकर रचनाएं कीं। परंपरा से चली आ रही पद्धतियों का भी प्रभाव पड़ा। नाथों और सिद्धों द्वारा जो साधना की पद्धतियां प्रचलित की गई थीं उन्हें संतों ने प्रतीक शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया।

नारी के विषय में कवियों के विचार भी तत्कालीन समय और समाज के अनुरूप थे। नारी को साधना की बाधा के रूप में स्वीकार किया गया। नारी आलवार संतों में| सम्मिलित थीं तथापि चेतना जगाने का कार्य मीराबाई ने किया। मीरा की रचनाएं जहां प्रेम भक्ति और माधुर्य से पूर्ण प्रेम की पीड़ा को प्रकट करती हैं वहीं विद्रोह की भावना को भी दर्शाती हैं।

भक्तिकाल के कवि जनता से जुड़े थे। उन्होंने राजा के लिए नहीं जनता के लिए काव्य-रचना की। समाज से जुड़े होने के कारण उन्होंने अपने व्यक्तिगत तथा समाजगत अनुभवों का सुंदर चित्रण किया । विदेशी शैलियों ने भी हिंदी काव्य को प्रभावित किया । मसनवी शैली सांस्कृतिक समन्वय की ही देन है । भाषा भी जनभाषा ही रही। भक्तिकालीन साहित्य का अधिकतर भाग गाए जाने वाले मुक्तक हैं, ऐसा जनता से जुड़ाव के कारण हुआ। इस प्रकार भक्तिकालीन परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव इस काल के साहित्य पर देख सकते हैं।

5.6 सार - संक्षेप

भक्तिकाल हिंदी साहित्य के इतिहास का ऐसा स्वर्ण युग है, जिसमें बहुत से दर्शनों, विचारों, मतवादों और सिद्धांतों की उपस्थिति तो है ही, उनका अद्भुत समन्वय भी यत्र-तत्र उपलब्ध है। ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग की समन्वित मंदाकिनी जिस युग में प्रवाहित हो रही थी, उस युग की दार्शनिक पृष्ठभूमि ही इस सुंदर समन्वय का कारण बन रही थी। भक्ति काल की निर्गुण काव्यधारा के अंतर्गत जहां ईश्वर के निर्गुण, निराकार रूप की उपासना की गई, वहीं सगुण काव्यधारा में ईश्वर के साकार रूप की उपासना की गई। इस प्रकार, इस इकाई

को पढ़ने से पाठक भक्ति के अर्थ और स्वरूप का महत्व समझ गए होंगे। साथ ही भक्तिकालीन परिस्थितियों एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में इस काल के काव्य में वर्णित सगुण-निर्गुण, योग, दार्शनिकता, आध्यात्मिकता का समन्वय देखते ही बनता है। भक्तिकाव्य का केवल साहित्यिक महत्व ही नहीं है वरन धार्मिक एवं सामाजिक महत्व भी है।

5.7 मुख्य शब्द

- **भक्ति** - ईश्वर के प्रति गहरा प्रेम और सेवा, जिसे पूजा, अर्चना, और समर्पण द्वारा व्यक्त किया जाता है।
- **स्मरण** - ईश्वर के नाम, गुण और लीलाओं का स्मरण करना।
- **कीर्तन** - भगवान के नाम, गुण, या लीला का सार्वजनिक रूप से गाना या सुनाना।
- **दास्य भाव** - भक्त का स्वयं को भगवान का दास मानने का भाव।
- **सख्य भाव** - भगवान को अपना सखा, मित्र मानने का भाव।
- **निर्गुण भक्ति** - भक्ति जिसमें भगवान को निराकार (निर्गुण) रूप में माना जाता है, यानी भगवान का कोई रूप या गुण नहीं होता।
- **सगुण भक्ति** - भक्ति जिसमें भगवान को साकार रूप में पूजा जाता है, जैसे राम, कृष्ण, या शिव।

5.8 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. सेवा करना

उत्तर: 2. परम प्रेम, अमृतस्वरूप

उत्तर: 3. श्रवण

उत्तर: 4. राजा-महाराजा, किसान

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी संचयन – संपादक: डॉ. नामवर सिंह, राजकमलप्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
2. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास – डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
3. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. डेविड रुबिन (अनुवाद: डॉ. राजेंद्र मिश्र), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2005
4. हिंदी साहित्य और समकालीन संदर्भ – डॉ. रमेश चंद्र शाह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
5. हिंदी साहित्य के आयाम – डॉ. शंभुनाथ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015
6. हिंदी का समाजशास्त्र – डॉ. अशोक कुमार पांडेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018

5.10 अभ्यास प्रश्न

1. भक्ति का वास्तविक अर्थ क्या है? इसे अपनी शब्दों में समझाइए।
2. सगुण और निर्गुण भक्ति के बीच अंतर बताइए।
3. 'कीर्तन' और 'स्मरण' का भक्ति मार्ग में क्या स्थान है? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
4. वात्सल्य भाव और सख्य भाव में से किसे अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं और क्यों?
5. भक्ति के विभिन्न रूपों (जैसे, शांति, माधुर्य, दास्य भाव) को एक उदाहरण के माध्यम से समझाइए।

इकाई - 6

संत काव्यधारा

6.1 प्रस्तावना
6.2 अध्ययन के उद्देश्य
6.3 संत काव्यधारा अथवा ज्ञानमार्गी शाखा
6.4 संत काव्य परंपरा के प्रमुख कवि
6.5 संत काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
6.6 संत काव्यधारा का काव्य रूप
6.7 सार - संक्षेप
6.8 मुख्य शब्द
6.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.11 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

संत काव्य भारतीय काव्य परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसे विशेष रूप से भक्तिकाव्य की श्रेणी में रखा जाता है। यह काव्य न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से, बल्कि समाज में व्याप्त असमानता और अन्याय के खिलाफ एक सशक्त आवाज के रूप में उभरा। संत कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से भगवान के प्रति भक्ति, प्रेम, और समर्पण की भावना को व्यक्त किया, लेकिन साथ ही साथ उन्होंने सामाजिक समरसता, सत्य, अहिंसा और समानता का संदेश भी दिया। संत काव्य में व्यक्त विचारों का उद्देश्य मनुष्य को आत्मज्ञान और ईश्वर से साक्षात्कार के लिए प्रेरित करना था, जिससे समाज में बदलाव और सुधार

की संभावना हो। इस काव्य परंपरा में प्रमुख संत कवियों जैसे कबीर, सूरदास, मीरा, तुलसीदास और गुरुनानक का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। इन कवियों के काव्य ने न केवल धार्मिक जीवन को गहरा किया, बल्कि भारतीय समाज में सकारात्मक परिवर्तन की दिशा भी निर्धारित की।

6.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- संत काव्य की परंपरा, उसकी विशिष्टताएँ और उद्देश्य।
- संत कवियों द्वारा अपने काव्य के माध्यम से धार्मिक, सामाजिक और मानसिक सुधार में दिए गए योगदान।
- संत काव्य का भक्ति भावों की अभिव्यक्ति और मानवता, समानता, और सच्चाई की प्रेरणा का सशक्त माध्यम होना।
- संत कवियों के विचारों, उनके काव्य की प्रभावशीलता और समाज में उनके शब्दों द्वारा लाए गए परिवर्तन।
- संत काव्य की वर्तमान प्रासंगिकता।

6.3 संत काव्यधारा अथवा ज्ञानमार्गी शाखा

संत काव्य का अभिप्राय है 'संतों द्वारा रचा गया काव्य' । संत विशिष्ट अर्थ में उस व्यक्ति को कहते हैं जिसने सत्यरूप परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया हो और जो निस्वार्थ भाव से लोककल्याण में रत हो। यह शब्द ज्ञानेश्वर आदि निर्गुण संतों के लिए रूढ़ हो गया तथा आगे चलकर कबीरदास आदि भक्त कवियों के लिए भी प्रचलित हो गया । इसीलिए हिंदी में जब 'संतकाव्य' कहा जाता है तो उसका अर्थ होता है- कबीर आदि निर्गुणपासक ज्ञानमार्गी कवियों द्वारा रचित काव्य।

ब्रह्म के निर्गुण अर्थात सत्वादि गुणों से रहित अथवा उनसे परे रहने वाले रूप को लेकर चलने वाले भक्त कवियों को निर्गुण धारा के कवि कहा गया। जिन भक्त कवियों ने इन निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने का साधन ज्ञान बनाया, उन्हें 'ज्ञानमार्गी' कहा गया कबीर, रैदास, दादू, रज्जब, आदि इसी धारा के प्रमुख कवि थे। इनके अनुसार "ज्ञान" का अर्थ न तो साधारण इन्द्रियजन ज्ञान है और न ही बौद्धिक तर्क-वितर्क से प्राप्त दार्शनिक ज्ञान है। इस शाखा में ज्ञान से तात्पर्य स्वतः उत्पन्न होने वाले प्रातिभ अथवा अतींद्रिय बोध से है। इसी कारण यह 'सहजज्ञान' कहा गया है। कबीर ने इसे 'ब्रह्मार्गयान' कहा है। इस ज्ञान को प्राप्त होने जाने से 'सहज समाधि' लग जाती है।

6.4 संत काव्य परंपरा के प्रमुख कवि

निर्गुण परंपरा का प्रारंभ जयदेव से ही हो जाता है। तदुपरांत नामदेव का नाम आता है। कबीर के गुरु रामानंद भी इसके बाद ही आते हैं। हिंदी में संतकाव्य की दृढ़ नींव रखने वाले कबीरदास हैं। इस परंपरा में जगजीवन साहब, सिंगाजी, हरिदास निरंजनी, धर्मदास, मलूकदास, गुरु नानक, दादूदयाल, गरीबदास आदि आते हैं। इस निर्गुण काव्यधारा की सबसे सशक्त कड़ी कबीरदास थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कबीर पर समकालीन सिद्धों और नाथों का भी प्रभाव था। उन्होंने विभिन्न प्रभावों का अतिक्रमण करने वाला अक्खड़ता और फक्कड़ता से युक्त ऐसा प्रखर व्यक्तित्व पाया था जो सबको अभिभूत कर लेता है। उनकी प्रमुख रचना 'बीजक' तीन भागों साखी, सबद, रमैनी, में विभक्त है। साखियां दोहा 'छंद' में रचित है। कबीर ने बाह्य आडंबरों, कुरीतियों की कटु आलोचना की। उन्होंने अनेक चमत्कारपूर्ण रूपक बांधे हैं, और उलटबांसियों की रचना की है। कबीर की भाषा 'सधुक्कड़ी' कहलाती है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनकी भाषा सक्षम है। इसी कारण हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है।

रैदास के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति बहुत आडंबरहीन थी। उनकी फुटकर वाणियां ही मिलती हैं। गुरु नानक का संग्रह 'आदिग्रंथ' है, जिसमें उनके पद एवं साखियां संगृहीत हैं। उनके काव्य में अक्खड़ता न होकर विनम्रता थी। इसी प्रकार दादूदयाल ने अलग संप्रदाय की स्थापना की, किंतु इनके दोहे कबीर जैसे ही थे। इनकी वाणियों का संग्रह 'हरड़ेबानी' या 'अंगबंधु' के नाम से जाना जाता है। इन्होंने हिंदी साहित्य का अपनी कविता में ईश्वर की व्यापकता, सतगुरु की महिमा, जाति-पांति का निराकरण, हिंदु - मुसलिम अभेद तथा आत्मबोध का कथन किया है, किंतु खंडन-मंडन में इनकी रुचि नहीं है। इनकी भाषा राजस्थानी के पुट वाली पश्चिमी हिंदी है। सुंदरदास एकमात्र ऐसे निर्गुणधारा के कवि हैं जो शास्त्रों और काव्यरीति से बहुत अच्छी तरह परिचित थे और देशाटन के कारण विभिन्न प्रदेशों के आचार-विचार का इन्हें अच्छा ज्ञान था। इन्होंने मंजी हुई ब्रजभाषा में साहित्यिक गुणों से युक्त सरस काव्य की रचना की है, किंतु साथ ही अपनी विद्वता के प्रदर्शन का भी प्रयत्न किया है। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'सुंदरविलास' है। मलूकदास ने हिंदू-मुसलमान दोनों को समान भाव से उपदेश दिया है। इनकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों की प्रचुरता है। इनकी भाषा व्यवस्थित और साहित्यिक है। इनके अतिरिक्त भी अनेक संत हुए, जिन्होंने काव्य-रचना की।

6.5 संत काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

निर्गुण काव्यधारा की संत काव्यधारा के विकास में योग देने वाले मुख्यतया 5 स्रोत हैं- (1) अपभ्रंश के सिद्ध और जैन मुनियों का साहित्य (2) नाथपंथ (3) वैष्णव भक्ति आंदोलन (4) महाराष्ट्रीय संत - संप्रदाय (5) इसलाम का प्रचार इन्हीं के प्रभाव स्वरूप संत काव्यधारा की विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास हुआ, जिनका परिचय निम्न है -

1. **समाज सुधार पर बल -** भारतीय समाज बहुत दिनों तक जाति विभाजित समाज रहा है। समाज में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग रहे। उच्च वर्ग ने

निम्न वर्ग का शोषण किया। इस अन्याय को संत कवियों ने सहन नहीं किया, रैदास के शब्दों में इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है –

जाके कुटुम्ब सब ढोर ढोवन्त, फिरहिं अजहुं बनारसी आसपास।
आचार सहित विप्र करहिं डंडउति, तिन तनै रविदास दासानुदासा ।।

इन संतों को समाज में जो सम्मान मिला, उससे समाज की वर्गभेद की खाई दूर हो गई।

2. सामाजिक सांस्कृतिक भावभूमि का वैशिष्ट्य - भक्तिकालीन साहित्य एक विशेष सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति की उपज है। संत कवि निम्न समझी जाने वाली जातियों से आए थे, अतः उनकी भावभूमि विद्रोहात्मक थी। वह जाति-पांति, छूआछूत, बाह्याचार, कर्मकांडों के घोर विरोधी थे। कभी-कभी ये उग्र भी हो जाते थे; यथा-

कांकर पाथर जोरि के मसजिद लई बनाई।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दै, बहरा हुआ खुदाई ||

(कबीर)

3. संत कवियों ने सुसंगति से ज्ञान अर्जित किया, इसमें जीवनगत अनुभवों को भी स्थान था। कहीं-कहीं ये उक्तियां बहुत मार्मिक बन गई हैं; यथा-

अरे इन दो उन राह न पाई ।
हिंदू अपनी करें बढ़ाई गागर छुवन न देवें काई।।

3. निर्गुण ब्रह्म की उपासना - निर्गुण संत कवियों ने ईश्वर के साकार रूप को नहीं स्वीकारा। अतः उनके 'राम' दशरथ सुत 'राम' नहीं वरन परम शक्ति है। सभी संत कवियों के राम (ईश्वर) निर्गुण निराकार ब्रह्म है। वास्तविकता यह है कि वैष्णव भावना से प्रभावित होने पर भी ये अवतारवाद में विश्वास नहीं रखते।

4. **दार्शनिकता** - संत काव्यधारा के लगभग सभी कवि, कवि न होकर दार्शनिक हैं। इन कवियों पर भारतीय ब्रह्मवाद, हठयोगियों की साधना, वैष्णवों की अहिंसा और प्रपत्तिवाद, सूफियों की प्रेम भावना, मुसलिमों के एकेश्वरवाद आदि का प्रभाव पड़ा था। इसलिए इनके दार्शनिक सिद्धांत भी अलग हैं ।

ब्रह्म की अवधारणा यह है कि वह परम सत्ता है जो अनंत, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है । ब्रह्म व्यापक है, घर-घर में व्यापत है, सब में रमा है -

खालिक खलक खलक में खालिक, सब घर रहा समाई।

जीव के विषय में संत कवि मानते हैं कि माया संतुलित आत्मा ही जीव है। वे अद्वैतवादी दर्शन को मानते हैं जिसके अनुसार ब्रह्म से ही जीव की उत्पत्ति हुई है तथा बाद में जीव ब्रह्म में ही मिल जाता है -

पाणी हि ते हिम भया, हिम है भया बिलाई ।

जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाई ।।

जगत की धारणा अद्वैतवादियों जैसी है। कबीर ने, जगत को परमात्मा का प्रतिबिंब माना है । जब ब्रह्म अपनी लीला का स्तर विस्तार करता है, तब इस नामरूपात्मक जगत की सृष्टि होती है, जिसे वह इच्छा होने पर अपने में ही समेट लेता है –

संसार ऐसा सुपिन जैसा जीवन सुपिन समान।

संत कवियों ने माया को महाठगिनी माना है । माया सचराचर जगत को उत्पन्न करती है। मायालिप्त मनुष्य को परमतत्व का ज्ञान नहीं हो सकता। काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर माया के ही रूप हैं। ब्रह्म में जो माया है, पिंड में वहीं कुंडलिनी है।

मोक्ष का अभिप्राय है मुक्ति। माया या अविद्या की निवृत्ति ही मोक्ष है। ऐसा हो जाने पर आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाती है। एक स्थान पर कबीर ने कहा है-

हम न मरैं मरिहैं संसार, हमकूं मिल्या जियावनहारा ।।

यह अमरत्व का बोध इसलिए है कि जीव और परमात्मा के बीच से माया या हिंदी स अज्ञान का आवरण हट गया है।

5. **रहस्यवाद** - परमसत्ता की भावात्मक अनुभूति को रहस्यवाद कहा जा सकता है। यह संतकाव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। संतकाव्य में साधनात्मक और भावात्मक दोनों रूप ही मिलता है। संत कवि हठयोग साधना पर बल देते हैं। उदाहरण स्वरूप -

रस गगन गुफा में अजर झरै।

अजपा सुमिरन जाप करे ।।

बिनु बाजा झनकार उठै जहं समुझि परै जब ध्यान धरै।

बिनु चंदा उजियारी दरसै जहं जहं हंसा नजरी परै ।।

6. **सूफियों के प्रेमदर्शन का प्रभाव** - सूफी परमात्मा को प्रेमस्वरूप मानते हैं, और उसे प्रेम के माध्यम से ही प्राप्त करते हैं। सूफियों के इस प्रेमदर्शन का प्रभाव संत कवियों पर भी पड़ा है और इसने काव्य में प्रेमसंलक्षण रहस्यवाद को जन्म देता है। इन कवियों ने परमात्मा को प्रियतम माना है और स्वयं को प्रियतमा। कबीर कहते हैं-

हरि मोर पिया मैं राम की बहुरिया।

1. नाथ सिद्धों का प्रभाव - संत कवियों ने नाथों - सिद्धों से न केवल काव्यवस्तु बल्कि काव्यरूपों को भी ज्यों का त्यों ले लिया। संत काव्य के तमाम पारिभाषिक शब्द उन्हीं से आए हैं। उदाहरणस्वरूप 'सहज' शब्द का बहुत प्रयोग किया है। यथा कबीर के शब्दों में -

सहज सहज सबकों कहै, सहज न चीन्है कोई

जिन्ह सहजै विषिया तजी, सहज कहीजै सोइ ।।

2. वैष्णव चिंतन परंपरा का प्रभाव इन कवियों पर वैष्णव चिंतन-परंपरा का स्पष्ट प्रभाव है। वैष्णवों के प्रति कबीर आदि संतों की इस अतिरिक्त श्रद्धा का कारण यह है कि उन्हें राम, गोपाल आदि नाम ही वैष्णवों से नहीं मिले हैं अपितु इनके प्रति भक्ति भावना भी वैष्णवों से ही मिली है। संतों ने सात्विक और सहज जीवन पर अत्यधिक बल दिया है उन पर यह भी वैष्णव प्रभाव ही है।

उक्त के अतिरिक्त संत काव्य की कुछ अन्य विशेषताएं भी हैं। इस संप्रदाय में नामोपासना पर बल दिया गया है। संत कवियों ने गुरु को ईश्वर से भी ऊपर स्थान दिया है। ये लोग कठिन साधना के पक्षपाती थे। इन्होंने सात्विक और सहज जीवन पर बल दिया।

स्वप्रगति परीक्षण

नीचे दिए गए प्रत्येक कथन को ध्यानपूर्वक पढ़ें और सत्य अथवा असत्य का चयन करें।

प्रश्न: 1. संत काव्यधारा में गुरु को ईश्वर से ऊपर स्थान दिया गया है।

प्रश्न: 2. संत काव्यधारा के कवि सभी ब्रह्मवादी सिद्धांतों के खिलाफ थे।

प्रश्न: 3. संत काव्य में निर्गुण ब्रह्म की उपासना की जाती थी।

प्रश्न: 4 संत काव्यधारा में नाथपंथ का कोई प्रभाव नहीं था।

6.6 संत काव्यधारा का काव्य रूप

संत काव्यधारा के कवियों ने कविता करने के लिए काव्य नहीं लिखा। उन्होंने कविता को साधन माना है, साध्य नहीं। संत काव्य मुख्य रूप से मुक्तक काव्य के रूप में मिलता है। साखियों में ज्ञान, आध्यात्मिक अनुभव तथा सामाजिक अनुभव को व्यक्त किया गया है। संतों ने आत्मनिवेदन आदि के उद्गारों को प्रकट करने के लिए सबद अर्थात गेय पदों की रचना की है।

इनके अतिरिक्त संतों ने बारहमासा माहात्म्यों, सहस्रनामों जैसे काव्यरूपों को भी अपनाया है।

- काव्यभाषा - संत कवियों ने भोजपुरी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, राजस्थानी आदि हिंदी की विभाषाओं को आधार भाषा के रूप में अपनाया है। संतों की काव्यभाषा "सधुक्कड़ी" भाषा कही गई। इसमें अव्यवस्था अपरिष्कर और व्याकरणच्युति मिलती है, लेकिन प्रामाणिक अनुभव और अपनी सहज सरलता के कारण यह भाषा अनायास ही बड़ी-बड़ी बातें बहुत ही मार्मिक ढंग से कहने में समर्थ हुई है।
- प्रतीकात्मकता - यह ज्ञानमार्गी शाखा की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। कवियों ने प्रतीकों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। आत्मा, परमात्मा के लिए, कमलिनी, सरोवर, जल, हंस आदि प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। अनेक प्रतीक हठयौगिक साधना पद्धति से लिए गए हैं। यथा कबीर का निम्न दोहा दृष्टव्य है –

  दीपक पावक ऑणिया, तेल भी आंण्या संग।

  तीन्यूं मिलि जोइया, तब उड़-उड़ि पड़े पतंग ।।

कभी-कभी बिंबात्मकता के दर्शन तथा मिथकीय प्रयोग भी हुए हैं।

- उलटबांसी शैली - योगी सहजयोगी और तांत्रिक इस बात का दावा करते थे कि वह तीन लोक से न्यारे हैं। सारी दुनिया अज्ञानवश उलटी बह रही है, सही रास्ते पर वही चल रहे हैं। अपनी इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने उलटबांसी की शैली अपनाई। कबीर आदि कवियों ने इस शैली को अपनाया -

  एक अचंभा देखो भाई
  ठाढ़ा सिंह चरावे गाई
  पहले पूत पाछै माई।

प्रतीकार्थ समझ लेने पर उलटबांसी सीधी लगने लगती है, अन्यथा यह पहेली बनी रहती है।

- अलंकार कवियों ने अलंकारों की योजना नहीं की, अपितु सहज ही वे काव्य में आ गए। उपमामूलक एवं विरोधमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास, श्लेष, असंगति का प्रयोग भी है -

  माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इबैं पड़ंत।
  कहै कबीर गुर ग्यान से, एक आध उबरंत।।

- छंद संतों ने छंद का बहुत प्रयोग किया है। दोहा, चौपाई, सोरठा प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुए हैं। साखी में दोहा छंद प्रधान है। सबद या पद गेय गीत हैं जो अनेक छंदों से मिलकर बने हैं। अनेक कवियों ने सवैया, कुंडलिया तथा कवित्त में भी कविता लिखी है। पद लययुक्त मिलते हैं। संत काव्य को हम दो रूपों में देख सकते हैं। पहला सामाजिक रूप तथा दूसरा साहित्यिक रूप। सामाजिक रूप से देखने पर पता चलता है कि इन्होंने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन की उद्घोषणा की है। ऐसी उपासना-पद्धति पर बल दिया जो सर्वमान्य हो। अनेक कुरीतियों, आडंबरों का खंडन कर मानवतावादी सोच अपनाई। व्यक्ति के आत्मगौरव को जगाया। साहित्यिक दृष्टिकोण से संत कवियों ने सीधे - सहज ढंग से अपनी बात कही। यदा-कदा चमत्कारपूर्ण उक्तियां कहीं। साहित्य में कथ्य पर बल दिया कला पर नहीं। यही उन्हें अन्य कवियों से विरल बना देता है।

6.7 सार - संक्षेप

संत काव्य भारतीय काव्य परंपरा का महत्वपूर्ण अंग है, जो मुख्य रूप से भक्ति, प्रेम, और समाज सुधार के तत्वों को व्यक्त करता है। संत कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल भगवान के प्रति प्रेम और भक्ति का संदेश

दिया, बल्कि उन्होंने समाज में व्याप्त जातिवाद, आडंबर और धार्मिक असहिष्णुता के खिलाफ भी विरोध किया। कबीर, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, और गुरुनानक जैसे संतों ने अपनी कविताओं में ईश्वर के साथ आत्म-संवाद को महत्व दिया और एकता, प्रेम, और समानता की भावना को प्रोत्साहित किया। उनके काव्य में यह स्पष्ट रूप से झलकता है कि परमात्मा के प्रति प्रेम और सच्ची भक्ति ही जीवन का सर्वोत्तम मार्ग है। संत काव्य ने न केवल धार्मिक, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण से भी समाज में बदलाव लाने का कार्य किया। यह काव्य न केवल भक्तों को एक ऊँचे आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचने के लिए प्रेरित करता है, बल्कि समाज में व्याप्त कुरीतियों और भेदभाव के खिलाफ जागरूकता फैलाता है। संत काव्य ने भारतीय समाज में एक नई चेतना और सुधार का मार्ग प्रशस्त किया, जो आज भी प्रासंगिक है।

6.8 मुख्य शब्द

- **संत काव्य** – संतों द्वारा रचित काव्य, जो जीवन के सत्य और परमात्मा के प्रति भक्ति का प्रतिपादन करता है।
- **भक्ति** – भगवान या परमात्मा के प्रति गहरी श्रद्धा और प्रेम, जो आत्म-सम्मान और मोक्ष की ओर मार्गदर्शन करता है।
- **प्रेम** – एक दिव्य भावना जो व्यक्ति को परमात्मा से जोड़ती है, संत काव्य में प्रेम का अर्थ केवल इंसानियत और आत्मीयता से नहीं, बल्कि परमात्मा से गहरे संबंध से है।
- **जागरूकता** – चेतना और समझ का विकास, जो व्यक्ति को जीवन के उच्चतर लक्ष्यों की ओर प्रेरित करता है।

- **कुरीतियाँ** – सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से गलत प्रथाएँ, जिन्हें संत काव्य ने समाप्त करने का प्रयास किया।
- **भेदभाव** – विभिन्न व्यक्तियों या समुदायों के बीच असमानता या भिन्नता, जिसे संत काव्य ने नकारा।
- **चेतना** – जागरूकता और मानसिक स्थिति, जो जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने में सहायक होती है।
- **आत्म-संवाद** – व्यक्ति का अपने आत्मा से संवाद, जो आत्मज्ञान की ओर मार्गदर्शन करता है।

6.9 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. सत्य

उत्तर: 2. असत्य

उत्तर: 3. सत्य

उत्तर: 4. असत्य

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर: उनकी कविता और दर्शन – लेखक: डॉ. श्यामलाल, राजकमल प्रकाशन, 2021
2. भक्ति काव्य का पुनः आवलोकन – लेखक: डॉ. रचना वर्मा, वाणी प्रकाशन, 2022
3. संत काव्य और आधुनिक समाज – लेखक: डॉ. गिरीश वर्मा, ज्ञानपीठ, 2020
4. काव्य और भक्ति: एक सांस्कृतिक अध्ययन – लेखक: डॉ. दीपक सिंह, पीएचपी प्रकाशन, 2023
5. भक्ति साहित्य और हिंदी कविता की परंपरा – लेखक: डॉ. कृष्ण कुमार यादव, आदर्श प्रकाशन, 2021

6. कबीर और उनके काव्य का आधुनिक संदर्भ – लेखक: डॉ. नरेश कुमार, जैन बुक डिपो, 2019

6.11 अभ्यास प्रश्न

1. संत काव्य के प्रमुख उद्देश्य क्या थे? संक्षेप में समझाइए।
2. संत काव्य में भक्ति का क्या महत्व था? इसे समाज सुधार से कैसे जोड़ा गया?
3. संत काव्य में समाज में व्याप्त कुरीतियों और आडंबर का विरोध किस प्रकार किया गया? उदाहरण के साथ समझाइए।
4. कबीर, सूरदास और तुलसीदास के काव्य में भक्ति का चित्रण कैसे हुआ?
5. संत काव्य में प्रेम और समानता के संदेश का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा? अपने उत्तर में संतों की रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

इकाई - 7

सूफी काव्यधारा

7.1 प्रस्तावना
7.2 अध्ययन के उद्देश्य
7.3 सूफी मत और सिद्धांत
7.4 सूफी प्रेम काव्य के प्रमुख कवि
7.5 सूफी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
7.6 सार - संक्षेप
7.7 मुख्य शब्द
7.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.10 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई में सूफी काव्यधारा की बारीकियों और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। सूफीमत के मूल सिद्धांतों, प्रेम के अद्वितीय दर्शन, और रहस्यवाद की गहराई को प्रस्तुत करते हुए इस इकाई ने सूफी काव्य की विशेषताओं को उजागर किया है। सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम के माध्यम से ईश्वर के प्रति आध्यात्मिक प्रेम की ओर मार्गदर्शन किया, जिसे वे 'इश्क मिजाजी' से 'इश्क हकीकी' की यात्रा के रूप में व्यक्त करते हैं। इस इकाई में सूफी कवियों की रचनाओं का विश्लेषण किया गया है, जिनमें प्रेम, विरह, और आत्मा-परमात्मा की एकता का विषय प्रमुख है। इसके अलावा, सूफी काव्य में प्रयुक्त छंद, अलंकार, और प्रतीकों के माध्यम से रचनाकारों ने भारतीय और अभारतीय तत्वों

का अद्भुत मिश्रण प्रस्तुत किया है। पाठक इस इकाई के अध्ययन से सूफी काव्यधारा के सृजनात्मक और आध्यात्मिक पहलुओं को समझ सकेंगे।

7.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- सूफीमत और उसके सिद्धांत, जिनमें धार्मिक, सामाजिक, और मानसिक सुधार के लिए अपनाई गई साधना पद्धति के आदर्श निहित हैं।
- सूफी काव्यधारा के प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं का साहित्यिक योगदान।
- सूफी काव्य में प्रेमतत्त्व, रहस्यवाद, प्रतीकात्मकता, और भाषा-शैली की विशेषताएँ।
- सूफी काव्यधारा में भारतीय और अभारतीय सांस्कृतिक, धार्मिक, और दार्शनिक तत्वों का समन्वय।
- सूफी काव्यधारा के गहरे अर्थों और मानवीय प्रेम व एकता से प्रेरित संदेश का महत्व।

7.3 सूफी मत और सिद्धांत

सूफी फकीरों ने तत्कालीन समाज के कष्टों को दूर करने के लिए व्यक्तिगत साधना की उच्चभूमि पर पहुंच कर लोकरक्षा के आदर्शों को स्थापित किया। सूफी फकीरों ने वैष्णव मत के अहिंसामय प्रेम को अपनाया। ये सहृदय एवं कोमल हृदय थे। भक्ति और उपासना के लिए सूफी ईश्वर को अनंत सौंदर्य, अनंत शक्ति, अनंत गुणों का सागर मानते हैं। फारस के शायर खय्याम, सनाई, सादी, रूमी के अद्वैतवादी विचारों ने भारतीय सूफियों को प्रभावित किया और हिंदी काव्य की प्रेमगाथा परंपरा को उसी रंग में रंग दिया।

प्रायः सूफी ईश्वर और जगत आत्मा-परमात्मा को एक मानते हैं। सूफी मत में साधक की चार अवस्थाएं मानी गई हैं-

1. शरीयत धर्मग्रंथ के विधि निषेध का सम्यक पालन।

2. तरीकत- बाहरी क्रिया-कलाप से परे होकर केवल हृदय की शुद्धता द्वारा ईश्वर का ध्यान।

3. हकीकत भक्ति और उपासक के प्रभाव से सत्य का बोध। इस बोध से ही साधक त्रिकालज्ञ हो जाता है।

4. मारफत सिद्धावस्था जिसमें कठिन उपवास और मौन आदि की साधना द्वारा अंत में साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।

ईश्वर की सत्ता का सार प्रेम है। 'इश्क मिजाजी' (लौकिक प्रेम) ही 'इश्क हकीकी हिंदी सा (आध्यात्मिक प्रेम) की ओर ले जाने की स्थिति है। इस मार्ग में कई पडाव हैं- जिन्हें 'मुलाकात' कहा जाता है। 'साधक' 'फना' से 'बका' की ओर बढ़ता है। सूफी ब्रह्मानंद का वर्णन लौकिक प्रेमानंद के रूप में करते हैं। इनके अनुसार ब्रहा बिंब है जगत उसका प्रतिबिंब है। यह सिद्धांत प्रतिबिंबवाद कहलाता है, जिसकी चर्चा पद्मावत में आती है।

7.4 सूफी प्रेम काव्य के प्रमुख कवि

सूफी काव्य परंपरा के सबसे लोकप्रिय कवि मलिक मुहम्मद जायसी थे। किंतु उनसे पूर्व भी प्रेमाख्यानक काव्यों की एक समृद्ध परंपरा मिलती है। अपभ्रंश के संदेशरासक, आदि भी प्रेमाख्यानक काव्य ही हैं जिनमें श्रृंगार और प्रेम की प्रधानता है। तत्पश्चात इस परंपरा में मुल्लादाऊद का 'चंदायन', दामो कवि का 'लक्ष्मणसेन पद्मावती', कुतुबन कृत 'मृगावती' ईश्वरदास रचित 'सत्यवती कथा' मंझन कृत 'मधुमालती' का उल्लेख मिलता है। मलिक मुहम्मद रचित 'पद्मावत' बहुत ही लोकप्रिय काव्य है। इसमें राजा रत्नसेन तथा सिंघलगढ़ की राजकुमारी

पद्मावती की प्रेमकथा है। यह सबसे बड़ी त्रासदी मानी जाती है। इसके अलावा उसमान कृत चित्रावली की प्रेमकथा मिलती है। तदुपरांत जान कवि के 21 सूफी काव्य मिलते हैं रत्नावती, लैलामजनूं, नलदमयंती, रतनमंजरी, कमलावती, छविसागर आदि। इन सभी रचनाओं पर पद्मावत का प्रभाव है। शेखनबी कृत 'ज्ञानदीप' में देवजानी और राजा ज्ञानदीप की प्रेमकथा का वर्णन है। 'हंस जवाहिर' नामक प्रेमकाव्य के रचयिता कासिमशाह थे। जबकि नूर मुहम्मद ने 'इंद्रावती' और 'अनुराग बांसुरी' की रचना की। इसी परंपरा में निसार कवि ने 'युसुफ जुलेखा' नामक प्रेमकाव्य लिखा। मसनवी पद्धति में लिखे गए ये सभी काव्य प्रबंध काव्य हैं और 'इश्कमिजाजी' से 'इश्कहकीकी' की यात्रा तय करते हैं। इन सभी कथा रूपकों का हिंदी सूफी काव्य परंपरा में महत्व अनुभूति की सघनता और मार्मिकता के कारण भी रहा है।

इन प्रेमाख्यानक सूफी काव्यों के नायक प्रेमपीड़ा को लेकर 'जोगी' हो जाते हैं। प्रेमिका के लिए संघर्ष करते हैं, कष्ट एवं यातनाएं सहन करते हैं। प्रेमिका को पाने के लिए यंत्र-तंत्र, रसायन, छलकपट आदि को अपनाते हैं। ये रचनाएं त्रासदी युक्त होती हैं। भारतीय प्रेमकथाएं सुखात्मक हैं, जबकि फारसी पद्धति की प्रेमकथाएं दुखात्मक हैं। विजयदेवनारायण साही लिखते हैं- "पद्मावत की कथा केवल अलाउद्दीन, रतनसेन और पद्मिनी की व्यक्तिगत ट्रेजेडी नहीं है जिन शर्तों पर जायसी का समाज उलट-पुलट रहा है उनके चलते समूची पृथ्वी के झूठी पड़ जाने की ट्रेजेडी है।"

ध्यातव्य है कि भारतीय सूफी कवियों ने प्रेमख्यान काव्यों की रचना पहले फारसी भाषा में की, तदुपरांत दो अन्य रूप मिले (1) पहला हिंदी के उन कवियों का है जो अवधी भाषा में दोहा-चौपाई छंद को लेकर प्रेम प्रधान मसनवी लिखते हैं। (2) दूसरा हिंदवी से प्रभावित दक्खिनी हिंदी को अपनाकर आगे बढ़ता है। किंतु इन कवियों में भारतीय लोककथाओं को ही कथानक बनाया।

7.5 सूफी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

सूफी काव्यधारा के कवियों ने इश्क मिजाजी' (लौकिक प्रेम) के माध्यम से इश्क हकीकी (ईश्वरीय प्रेम) की प्राप्ति का लक्ष्य रखा है। इसके लिए नायक-नायिका कष्ट सहने को भी तत्पर रहते हैं। सूफी काव्य की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियां निम्न हैं-

1. प्रेमतत्त्व की व्यंजना - सूफी काव्य का प्रधान विषय प्रेमतत्व की व्यंजना है। प्रेम तत्व में कवियों ने संयोग को कम वियोग को अधिक महत्व दिया। विरहदशा का सजीव अंकन किया गया है। सूफियों ने विरह वर्णन के अंतर्गत ऋतु वर्णन, बारहमासा का इतना ऊहात्मक वर्णन किया कि प्रकृति भी विरह ताप से झुलस जाती है।

प्रेम वर्णन में श्रृंगार रस की प्रमुखता है। कवियों ने प्रत्यक्ष दर्शन, गुण श्रवण, स्वप्न दर्शन, चित्र दर्शन के माध्यम से प्रेम को बढ़ाया है। सखा, सखी, दूत, पक्षी, वन आदि उद्दीपन रूप में कार्य करते हैं।

2. चरित्र - चित्रण - सूफी कवियों ने घटनाचक्र तथा परिवेश चित्रण के साथ-साथ चरित्र चित्रण भी किया। किंतु चरित्र चित्रण को प्रधानता नहीं मिली है। मूलतः ये सभी चरित्र (पात्र) सूफी प्रेम सिद्धांत को सामने लाने के माध्यम रहे हैं। यही कारण है कि इन पात्रों में मानव जीवन की झलक मिलने पर भी मानव जीवन के पूर्ण चित्र नहीं मिलते हैं। नायक पराक्रमी होते हुए भी विरह की पीड़ा सहन करने को विवश है। प्रति नायकों का भी चरित्र विकास नहीं हो सका है।

3. रहस्यवाद - रहस्यवाद के दो प्रकार हैं- साधनात्मक और भावात्मक। सूफियों में भावात्मक रहस्यवाद ही अधिक मिलता है, इन्होंने रहस्यात्मक 'माधुर्यभाव' को अपनाया है। सूफियों के रहस्यवाद में भावना की गहराई है और साधना की शक्ति। इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल का कथन दृष्टव्य है- "हिंदी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुंदर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिसकी

भावुकता बहुत ही उच्चकोटि की है। वे, सूफियों की भक्ति भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत के नाना रूपों में उस प्रियतम के माधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक व्यापारों और रूपों के साथ प्रकृति का श्रृंगार या विरह विकलता का अनुभव करते हैं।

4. भारतीय एवं अभारतीय तत्वों का मिश्रण- सूफी कवियों की प्रेमगाथाओं में भारतीय एवं अभारतीय तत्वों का अद्भुत सांमजस्य मिलता है। सूफी कवि अपने सिद्धांतों के प्रचार से ज्यादा हिंदू-मुसलमान के हृदय को मिलाने में विश्वास करते थे। इन्होंने हिंदुओं की प्रेमगाथाओं को अवधी में प्रस्तुत किया, तथा विदेशी इसलाम धर्म को हिंदुओं से मिलाया। भारतीय दर्शन से प्रभावित हो प्रकृति की समस्त सत्ता में प्रिय की सत्ता का अनुभव किया -

रवि ससि नखत दियहिं ओहि जोति
रतन पदारथ माषिक मोती।

सूफियों के रहस्यवाद का प्रेम तत्व अभारतीय है। सूफी काव्य में परमात्मा को प्रियतमा माना गया जो अभारतीय है। साथ ही हठयोग साधना का प्रभाव भी सहज ही मिल जाता है। यथा-

नवौ खंड नव पौरों औ तह वज केबार।
चारि बसेरे सौं चदै, सत सौं उतरे पार ।।

विशेष बात यह है कि सूफी कवियों ने भारत की प्रबंध काव्य शैली में फारस की मसनवी शैली का सामंजस्य किया। इस प्रकार इन कवियों ने वस्तु और रूप दोनों स्तरों पर भारतीय अभारतीय तत्वों का सामंजस्य किया।

प्रबंध कल्पना और कथानक रूढ़ियां सूफी कवियों ने प्रबंध काव्यों की रचना की, किंतु यह प्रबंधत्व भारतीय काव्यशास्त्र के नियमों में बंधकर नहीं चलता। वास्तव में सूफी काव्य का ढांचा प्रेमकथा के प्रतिपादन पर खड़ा होता है। काव्य रूप की दृष्टि से फारसी प्रेमकाव्यों का प्रभाव ग्रहण किया है। फारसी की मसनवी शैली को अपनाया गया है। सूफियों ने चौपाई दोहा पद्धति को अपनाया। भारतीय

सूफियों ने अपभ्रंश काव्य की चरित काव्य वाली रचना शैली को भी अपनाया है और 'प्रेम की पीर' का कथा में वर्णन किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा- "इन सभी सूफी कवियों ने कथानक को गति देने और एक विशेष प्रकार के आकर्षण में बांधने के लिए परंपरा से प्राप्त भारतीय कथाओं में मौजूद कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया है।"

5 प्रतीकात्मकता - सूफी कवियों ने प्रतीकों के माध्यम से कथाएं कहीं हैं। यहां तक की पात्र योजना, स्थान, अन्य विवरण सभी प्रतीकों के माध्यम से आए हैं। चित्रावती, मधुमालती, पद्मावत आदि की पूरी कथा ही प्रतीक है जिसमें लौकिक प्रेम कथा के उदय, क्रम विकास परिणाम में अलौकिक प्रेम की झांकी मिलती है। पूरी कथा में नायक आत्मा का प्रतीक तथा नायिका परमात्मा का प्रतीक है। अतः सभी काव्य एक प्रकार के कथारूपक हैं। इन कथाओं में प्रतीकों की इतनी भरमार है कि इनका रहस्वाद इन प्रतीकों को समझकर ही समझा जा सकता है। यथा-

तन चितउर मन राउर कीन्हा,
हिय सिंघल, बुद्धि पदमिनी चीन्हा।
गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा,
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ।।

6-काव्य भाषा, अलंकार एवं छंद - हिंदी के अधिकांश सूफी कवियों की भाषा अवधी है। इस काव्यभाषा की सर्जनात्मकता का ठेठ देशी रूप पद्मावत में मिलता है। सूफी कवियों ने काव्यभाषा की सर्जनात्मक शक्ति को उजागर किया है। अवधी प्रधान भाषा थी, पर कहीं कहीं ब्रजभाषा, भोजपुरी का पुट भी है। अलंकारों की दृष्टि से प्रचलित अलंकारों का ही प्रयोग किया गया है।

रूपक, उपमा, समासोक्ति तथा अन्योक्ति का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। अरबी-फारसी से प्रभावित होने पर भी उपमान योजना भारतीय है। साथ ही काव्य बिंब

ही प्रस्तुत किए हैं और अमूर्त भावों को मूर्त बनाया गया है। छंद योजना की दृष्टि से कवियों ने दोहा-चौपाई पद्धति को ही अपनाया है। सूफी काव्य में सोरठा, सवैया और बरवें जैसे छंदों का कभी-कभी प्रयोग किया है। जायसी की दोहा-चौपाई पद्धति को 'कडवक बद्धपद्धति' कहना चाहिए जो अपभ्रंश के चरित काव्यों से गृहीत की गई है।

सूफी कवियों ने भाषां और साहित्य को प्रेमदर्शन की नवीन दृष्टि प्रदान की है। इन कवियों ने मानव जीवन के सर्वांग विकास पर अपना ध्यान केंद्रित किया। "मानुष प्रेम भयउ बैकुंठी" का जीवन दर्शन ही इन सूफी कवियों का एकमात्र उद्देश्य है। विश्व बंधुत्व ही इनका परम लक्ष्य था। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है- "कुछ भावुक मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियां लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे। ये कहानियां हिंदुओं के घर की थीं। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है। जिसे छूते ही मनुष्य के सारे बाहरी रूप रंग के भेदों की ओर ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है। वास्तव में यह हृदय की मुक्तावस्था से निकला काव्य है, जो मानव के हृदय को मिलाने के लिए नई दृष्टि देता है।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न : 1. सूफी काव्य का प्रमुख विषय क्या है?

प्रश्न : 2. 'पद्मावत' काव्य के रचनाकार कौन थे?

प्रश्न : 3. सूफी काव्य में नायक और नायिका किसके प्रतीक होते हैं?

प्रश्न : 4 सूफी काव्य में प्रेम की अवस्था का प्रमुख रूप क्या है?

7.6 सार - संक्षेप

इस इकाई में सूफी काव्यधारा के प्रमुख सिद्धांतों और प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है। सूफी कवियों ने ईश्वर के प्रति प्रेम को अपनी रचनाओं का मूल विषय बनाया, जिसे वे 'इश्क मिजाजी' (लौकिक प्रेम) से 'इश्क हकीकी' (आध्यात्मिक प्रेम) की ओर एक यात्रा के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन कवियों ने प्रेम, विरह, और आत्मा-परमात्मा की एकता को प्रमुख रूप से चित्रित किया। सूफी काव्य में प्रेम की पीड़ा, साधना, और रहस्यवाद का विशेष स्थान है, जो नायक और नायिका के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त, सूफी काव्य में भारतीय और फारसी तत्वों का अद्वितीय मिश्रण देखने को मिलता है, जो प्रेम और एकता की भावना को फैलाने का प्रयास करता है। सूफी काव्य के प्रतीकात्मकता, छंद, और अलंकारों के माध्यम से एक गहरी आध्यात्मिकता व्यक्त की गई है, जो पाठकों को जीवन और प्रेम के अदृश्य सत्य के प्रति जागरूक करती है।

7.7 मुख्य शब्द

- **काव्यधारा -** किसी विशेष साहित्यिक शैली या प्रवृत्ति, जिसमें कविताएँ एक निर्धारित रूप में लिखी जाती हैं।
- **प्रेम -** किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति गहरी भावनात्मक आकर्षण और स्नेह।
- **विरह -** प्रियजन से शारीरिक या मानसिक दूरी की स्थिति, जिसके कारण दुख और पीड़ा होती है।
- **ईश्वर -** सर्वोच्च शक्ति, जिसे सृष्टि और जीवन के रचनाकार के रूप में माना जाता है।
- **आध्यात्मिक** - आत्मा, धर्म और ईश्वर से संबंधित; मानसिक और शारीरिक शांति के लिए ध्यान और साधना की ओर प्रवृत्त।

- **रहस्यवाद** - दिव्य और अलौकिक अनुभवों के माध्यम से सत्य और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति।
- **प्रतीक** - कोई वस्तु, चिन्ह या विचार जो किसी गहरे या अमूर्त अर्थ को व्यक्त करता है।

7.8 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर : 1. सूफी काव्य का प्रमुख विषय प्रेमतत्त्व की व्यंजना है।

उत्तर : 2. 'पद्मावत' काव्य के रचनाकार मलिक मुहम्मद जायसी थे।

उत्तर : 3. सूफी काव्य में नायक आत्मा और नायिका परमात्मा के प्रतीक होते हैं।

उत्तर : 4 सूफी काव्य में प्रेम की अवस्था वियोग की होती है।

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी सूफी काव्य: एक आलोचनात्मक अध्ययन - लेखक: डॉ. भगवती सुमन, साहित्य भवन, 2000
2. सूफी काव्य: दर्शन और साहित्य - लेखक: डॉ. इब्राहीम अली, साहित्य अकादमी, 2003
3. सूफी परंपरा और भारतीय संस्कृति - लेखक: डॉ. रेखा शर्मा, वाणी प्रकाशन, 2010
4. सूफी साहित्य का सांस्कृतिक विमर्श - लेखक: डॉ. विजय मिश्रा, राजकमल प्रकाशन, 2015

5. सूफी काव्य और भारतीय चेतना - लेखक: डॉ. रचना वर्मा, वाणी प्रकाशन, 2018
6. सूफी साहित्य का आधुनिक परिप्रेक्ष्य - लेखक: डॉ. मनोज तिवारी, साहित्य भवन, 2021

7.10 अभ्यास प्रश्न

1. सूफी साहित्य के प्रमुख सिद्धांतों पर प्रकाश डालें।
2. "प्रेम और विरह" का काव्य में स्थान और महत्व क्या है? उदाहरण के साथ समझाएं।
3. आध्यात्मिक और भौतिक जीवन के बीच संबंध पर चर्चा करें। सूफी साहित्य में इसका चित्रण कैसे किया गया है?
4. सूफी काव्य में प्रतीक और अलंकार का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है? उदाहरण देकर स्पष्ट करें।
5. सूफी संतों के योगदान और उनके काव्य का समाज पर प्रभाव पर चर्चा करें।

इकाई - 8

निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवि

8.1 प्रस्तावना

8.2 अध्ययन के उद्देश्य

8.3 निर्गुणधारा (ज्ञानाश्रयी) के कवि

8.3.1 रैदास (रवि दास)

8.3.2 धर्मदास एवं सुन्दरदास

8.4 निर्गुणधारा (प्रेममार्गी शाखा के कवि)

8.4.1 कुतुबन एवं मंझन

8.4.2 नूर मोहम्मद

8.5 सार - संक्षेप

8.6 मुख्य शब्द

8.7 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.9 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

निर्गुण काव्यधारा भारतीय काव्य परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो भगवान के निराकार रूप और उसकी अव्यक्त सत्ता पर केंद्रित है। इस काव्यधारा में भक्ति और प्रेम को एक नये दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है, जहाँ देवता के रूप और रूपक का कोई निर्धारण नहीं होता। प्रमुख निर्गुण कवि जैसे रैदास, धर्मदास, सुन्दरदास, कुतुबन, और मंझन ने इस धारणा को फैलाया और इसके माध्यम से समाज में एकता और भक्ति का संदेश दिया। इन कवियों का काव्य

न केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्रदान करता है, बल्कि जीवन के वास्तविक स्वरूप को भी प्रकट करता है।

8.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- निर्गुण काव्यधारा की अवधारणा और इसके प्रमुख कवियों, जैसे रैदास, धर्मदास, सुन्दरदास, कुतुबन और मंझन, का योगदान।
- भगवान की निराकार सत्ता को प्रस्तुत करने में इन कवियों की काव्यात्मक विशेषताएँ।
- प्रेम और भक्ति के निराकार रूप की व्याख्या में निर्गुण काव्यधारा का महत्व।
- निर्गुण भक्ति के सिद्धांत को सरल और गहरे रूप में व्यक्त करने में कवियों की भूमिका।
- इन कवियों की रचनाओं द्वारा जीवन के आध्यात्मिक पहलुओं का प्रकटीकरण।

8.3 निर्गुणधारा (ज्ञानाश्रयी) के कवि

8.3.1 रैदास (रवि दास)

रामानंद जी के बारह शिष्यों में रैदास भी माने जाते हैं जो जाति के चमार थे। इन्होंने कई पदों में अपने को चमार कहा भी है, जैसे-

(१) कह रैदास खलास चमारा।

(२) ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार।

ऐसा जान पड़ता है कि ये कबीर के बहुत पीछे स्वामी रामानंद के शिष्य हुए क्योंकि अपने एक पद में इन्होंने कबीर और सेन नाई दोनों के तरने का उल्लेख किया है-

नामदेव कबीर तिलोचन सधना सेन तरै।

कह रविदास, सुनहु रे संतहु ! हरि जिउ तें सबहि सरै।

कबीरदास के समान रैदास भी काशी के रहने वाले कहे जाते हैं। इनके एक पद से भी यही पाया जाता है -

जाके कुटुंब सब ढोर ढोवंत

फिरहिं अजहुँ बानारसी आसपासा।

आचार सहित बिप्र करहिं डंडउति

तिन तनै रविदास दासानुदासा ॥

रैदास का नाम धन्ना और मीराबाई ने बड़े आदर के साथ लिया है। रैदास की भक्ति भी निर्गुण ढाँचे की जान पड़ती है। कहीं तो वे अपने भगवान को सबमें व्यापक देखते हैं -

थावर जंगम कीट पतंगा पूरि रह्यो हरिराई।

और कहीं कबीर की तरह परात्पर की ओर संकेत करके कहते हैं —

गुन निर्गुन कहियत नहिं जाके।

रैदास का अपना अलग प्रभाव पँछाह की ओर जान पड़ता है। 'साधो' का एक संप्रदाय, जो फर्रुखाबाद और थोड़ा बहुत मिर्जापुर में भी पाया जाता है, रैदास की ही परंपरा में कहा जा सकता है, क्योंकि उसकी स्थापना (संवत् १६००) करने वाले बीरभान उदयदास के शिष्य थे और उदयदास रैदास के शिष्यों में माने जाते हैं।

रैदास का कोई ग्रंथ नहीं मिलता, फुटकल पद ही 'बानी' के नाम से, 'संतबानी सीरीज' में संग्रहीत हैं। चालीस पद तो 'आदि गुरु ग्रंथ साहब' में दिए गए हैं। कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं-

दूध त बछरै थनह बिडारेउ। फुलु भँवर, जलु मीन बिगारेउ ॥
माई, गोबिंद पूजा कहा लै चढ़ावउँ। अवरु त फूल अनूपु न पावउँ ॥
मलयागिरिवै रहै हैं भुअंगा। विषु अमृत बसहीं इक संगा ॥
तन मन अरपउँ पूज चढ़ावउँ। गुरु परसादि निरंजन पावउँ ॥
पूजा अरचा आहि न तोरी। कह रविदास कवनि गति मोरी ॥

8.3.2 धर्मदास एवं सुन्दरदास

ये बाँधवगढ़ के रहनेवाले और जाति के बनिए थे। बाल्यावस्था में ही इनके हृदय में भक्ति का अंकुर था और ये साधुओं का सत्संग, दर्शन, पूजा, तीर्थाटन आदि किया करते थे। मथुरा से लौटते समय कबीरदास के साथ इनका साक्षात्कार हुआ। उन दिनों संत समाज में कबीर की पूरी प्रसिद्धि हो चुकी थी। कबीर के मुख से मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, देवार्चन आदि का खंडन सुनकर इनका झुकाव 'निर्गुण' संतमत की ओर हुआ। अंत में ये कबीर से सत्य नाम की दीक्षा लेकर उनके प्रधान शिष्यों में हो गये और संवत् १५७५ में कबीरदास के परलोकवास पर उनकी गद्दी इन्हीं को मिली। कबीरदास के शिष्य होने पर इन्होंने अपनी सारी संपत्ति, जो बहुत अधिक थी, लुटा दी। ये कबीरदास की गद्दी पर बीस वर्ष के लगभग रहे और अत्यंत वृद्ध होकर इन्होंने शरीर छोड़ा। इनकी शब्दावली का भी संतों में बड़ा आदर है। इनकी रचना थोड़ी होने पर भी कबीर की अपेक्षा अधिक सरल भाव लिए हुए है, उसमें कठोरता और कर्कशता नहीं है। इन्होंने पूरबी भाषा का ही व्यवहार किया है। इनकी अन्योक्तियों के व्यंजक चित्र अधिक मार्मिक हैं क्योंकि इन्होंने खंडन-मंडन से विशेष प्रयोजन न रख प्रेमतत्व को लेकर अपनी वाणी का प्रसार किया है। उदाहरण के लिये कुछ पद नीचे दिए जाते हैं-

झरि लागै महलिया गगन घहराय।
खन गरजै, खन बिजुली चमकै, लहरि उठै सोभा बरनि न जाय।
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम अनंद वै साधु नहाय ॥
खुली केवरिया, मिटी अंधियरिया, धनि सतगुरु जिन दिया लखाय।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन में रहत समाय ॥
मितऊ मड़ैया सूनी करि गैलो ॥
अपना बलम परदेश निकरि गैलो, हमरा के किछुवौ न गुन दै गैलो।
जोगिन होइके मैं वन वन ढूँढ़ौ, हमरा के बिरह बैराग दै गैलो ॥

सुंदरदास - ये खंडेलवाल बनिए थे और चैत्र शुक्ल ९, संवत् १६५३ में द्यौसा नामक स्थान (जयपुर राज्य) में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम परमानंद और माता का नाम सती था। जब ये ६ वर्ष के थे तब दादूदयाल द्यौसा में गए थे। तभी से ये दादूदयाल के शिष्य हो गए और उनके साथ रहने लगे। संवत् १६६० में दादूदयाल का देहांत हुआ। तब तक ये नराना में रहे। फिर जगजीवन साधु के साथ अपने जन्मस्थान द्यौसा में आ गए। वहाँ संवत् १६६३ तक रहकर फिर जगजीवन के साथ काशी चले आए। वहाँ तीस वर्ष की अवस्था तक ये संस्कृत व्याकरण, वेदांत और पुराण आदि पढ़ते रहे। संस्कृत के अतिरिक्त ये फारसी भी जानते थे। काशी से लौटने पर ये राजपूताने के फतहपुर (शेखावाटी) नामक स्थान पर आ रहे। वहाँ के नवाब अलिफ खाँ इन्हें बहुत मानते थे। इनका देहांत कार्तिक शुक्ल ८, संवत् १७४६ को साँगानेर में हुआ।

इनका डीलडौल बहुत अच्छा, रंग गोरा और रूप बहुत सुंदर था। स्वभाव अत्यंत कोमल और मृदुल था। ये बालब्रह्मचारी थे और स्त्री की चर्चा से सदा दूर रहते थे। निर्गुणपंथियों में यही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्हें समुचित शिक्षा मिला थी और जो काव्यकला की रीति आदि से अच्छी तरह परिचित थे। अतः इनकी रचना साहित्यिक और सरस है। भाषा भी काव्य की मँजी हुई ब्रज भाषा है। भक्ति और ज्ञानचर्चा के अतिरिक्त नीति और देशाचार आदि पर भी इन्होंने बड़े

सुंदर पद कहे हैं। और संतों ने केवल गाने के पद और दोहे कहे हैं, पर इन्होंने सिद्धहस्त कवियों के समान बहुत से कवित्त और सवैये रचे हैं। यों तो छोटे-मोटे इनके अनेक ग्रंथ हैं पर सुंदरविलाप ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है, जिसमें कवित्त सवैये ही अधिक हैं। इन कवित्त सवैयों में यमक, अनुप्रास और अर्थालंकार आदि की योजना बराबर मिलती है।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न 1. रैदास जी का असली नाम _____ था।

प्रश्न 2. रैदास जी ने अपने भगवान को _____ में व्यापक देखा है।

प्रश्न 3. धर्मदास और सुन्दरदास ने _____ संतमत की ओर झुकाव किया था।

प्रश्न 4. सुन्दरदास के प्रमुख ग्रंथों में से एक _____ है।

8.4 निर्गुणधारा (प्रेममार्गी शाखा के कवि)

8.4.1 कुतुबन एवं मंझन

कुतबन - ये चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे और जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह के आश्रित थे। अतः इनका समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का मध्यभाग (संवत् १५५०) था। इन्होंने 'मृगावती' नाम की एक कहानी चौपाई दोहे के क्रम से सन् ९०९ हिजरी (संवत् १५५८) में लिखी जिसमें चंद्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारि की कन्या मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन है। इस कहानी के द्वारा कवि ने प्रेममार्ग के त्याग और कष्ट का निरूपण करके साधक के भगवत्प्रेम का स्वरूप दिखाया है। बीच-बीच में सूफियों की शैली पर बड़े सुंदर रहस्यमय आध्यात्मिक आभास है।

कहानी का सारांश यह है- चंद्रगिरि के राजा गणपतिदेव का पुत्र कंचननगर के राजा रूपमुरारि की मृगावती नाम की राजकुमारी पर मोहित हुआ। यह राजकुमारी

उड़ने की विद्या जानती थी। अनेक कष्ट झेलने के उपरांत राजकुमार उसके पास तक पहुँचा। पर एक दिन मृगावती राजकुमार को धोखा देकर कहीं उड़ गई। राजकुमार उसकी खोज में योगी होकर निकल पड़ा। समुद्र से घिरी एक पहाड़ी पर पहुँचकर उसने रुक्मिनी नाम की एक सुंदरी को एक राक्षस से बचाया। उस सुंदरी के पिता ने राजकुमार के साथ उसका विवाह कर दिया। अंत में राजकुमार उस नगर में पहुँचा जहाँ अपने पिता की मृत्यु पर राजसिंहासन पर बैठकर मृगावती राज्य कर रही थी। वहाँ वह १२ वर्ष रहा। पता लगाने पर राजकुमार के पिता ने घर बुलाने के लिये दूत भेजा। राजकुमार पिता का सँदेसा पाकर मृगावती के साथ चल पड़ा और उसने मार्ग में रुक्मिनी को भी ले लिया। राजकुमार बहुत दिनों तक आनंदपूर्वक रहा पर अंत में आखेट के समय हाथी से गिरकर मर गया। उसकी दोनों रानियाँ प्रिय के मिलने की उत्कंठा में बड़े आनंद के साथ सती हो गईं -

रुकमिनि पुनि वैसहि मरि गई। कुलवंती सत सों सति भई ॥
बाहर वह भीतर वह होई। घर बाहर को रहै न जोई ।।
विधि का चरित न जानै आनू। जो सिरजा सो जाहि निआनू॥

मंझन - इनके संबंध में कुछ भी ज्ञान नहीं है। केवल इनकी रची मधुमालती की एक खंडित प्रति मिली है जिसमें इनकी कोमल कल्पना और स्निग्धसहृदयता का पता लगता है।

मृगावती के समान मधुमालती में भी पाँच चौपाइयों (अर्द्धालियों) के उपरांत एक दोहे का क्रम रखा गया। पर मृगावती की अपेक्षा इसकी कल्पना भी विशद है और वर्णन भी अधिक विस्तृत और हृदयग्राही है। आध्यात्मिक प्रेमभाव की व्यंजना के लिये प्रकृति के भी अधिक दृश्यों का समावेश मंझन ने किया है। कहानी भी कुछ अधिक जटिल और लंबी है जो अत्यंत संक्षेप में नीचे दी जाती है -

कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर नामक एक सोए हुए राजकुमार को अप्सराएँ रातोंरात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी में रख आईं। वहाँ जागने पर दोनों का साक्षात्कार हुआ और दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गए। पूछने पर मनोहर ने अपना परिचय दिया और कहा- 'मेरा अनुराग तुम्हारे ऊपर कई जन्मों का है इससे जिस दिन मैं इस संसार में आया उसी दिन से तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ।' बातचीत करते-करते दोनों एक साथ सो गए और अप्सराएँ राजकुमार को उठाकर फिर उसके घर पर रख आईं। दोनों जब अपने-अपने स्थान पर जगे तब प्रेम में बहुत व्याकुल हुए। राजकुमार वियोग से विकल होकर घर से निकल पड़ा और उसने समुद्र मार्ग से यात्रा की। मार्ग में तूफान आया जिसमें इष्ट मित्र इधर-उधर बह गए। राजकुमार एक पटरे पर बहता हुआ एक जंगल में जा लगा, जहाँ एक स्थान पर एक सुंदर स्त्री पलंग पर लेटी दिखाई पड़ी। पूछने पर जान पड़ा कि वह चितबिसरामपुर के राजा चित्रसेन की कुमारी प्रेमा थी जिसे एक राक्षस उठा लाया था। मनोहर कुमार ने उस राक्षस को मारकर प्रेमा का उद्धार किया। प्रेमा ने मधुमालती का पता बताकर कहा कि वह मेरी सखी है। मैं उसे तुझसे मिला दूँगी। मनोहर को लिए हुए प्रेमा अपने पिता के नगर में आई। मनोहर के उपकार को सुनकर प्रेमा का पिता उसका विवाह मनोहर के साथ करना चाहता है। पर प्रेमा यह कहकर अस्वीकार करती है कि मनोहर मेरा भाई है और मैंने उसे उसकी प्रेमपात्री मधुमालती से मिलाने का वचन दिया है।

दूसरे दिन मधुमालती अपनी माता रूपमंजरी के साथ प्रेमा के घर आई और प्रेमा ने उसके साथ मनोहर कुमार का मिलाप करा दिया। सबेरे रूपमंजरी ने चित्रसारी में जाकर मधुमालती को मनोहर के साथ पाया। जगने पर मनोहर ने तो अपने को दूसरे स्थान में पाया और रूपमंजरी अपनी कन्या को भला बुरा कहकर मनोहर का प्रेम छोड़ने को कहने लगी। जब उसने न माना तब माता ने शाप दिया कि तू पक्षी हो जा। जब वह पक्षी होकर उड़ गई तब माता बहुत पछताने

और विलाप करने लगी पर मधुमालती का कहीं पता न लगा। मधुमालती उड़ती-उड़ती बहुत दूर निकल गई। कुँवर ताराचंद नाम के एक राजकुमार ने उस पक्षी की सुंदरता देख उसे पकड़ना चाहा। मधुमालती को ताराचंद का रूप मनोहर से कुछ मिलता-जुलता दिखाई दिया इससे वह कुछ रुक गई और पकड़ ली गई। ताराचंद ने उसे एक सोने के पिंजरे में रखा। एक दिन पक्षी मधुमालती ने प्रेम की सारी कहानी ताराचंद से कह सुनाई जिसे सुनकर उसने प्रतिज्ञा की कि मैं तुझे तेरे प्रियतम मनोहर से अवश्य मिलाऊँगा। अंत में वह उस पिंजरे को लेकर महारस नगर में पहुँचा। मधुमालती की माता अपनी पुत्री को पाकर बहुत प्रसन्न हुई और उसने मंत्र पढ़कर उसके ऊपर जल छिड़का। वह फिर पक्षी से मनुष्य हो गई। मधुमालती के माता-पिता ने ताराचंद के साथ मधुमालती का ब्याह करने का विचार प्रकट किया। पर ताराचंद ने कहा कि 'मधुमालती मेरी बहन है और मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं जैसे होगा वैसे मनोहर से मिलाऊँगा।' मधुमालती की माता सारा हाल लिखकर प्रेमा के पास भेजती है। मधुमालती भी उसे अपने चित्त की दशा लिखती है। वह दोनों पत्रों को लिए हुए दुःख कर रही थी कि इतने में उसकी एक सखी आकर संवाद देती है कि राजकुमार मनोहर योगी के वेश में आ पहुँचा है। मधुमालती का पिता अपनी रानी सहित दलबल के साथ राजा चित्रसेन (प्रेमा के पिता) के नगर में जाता है और वहाँ मधुमालती और मनोहर का विवाह हो जाता है। मनोहर, मधुमालती और ताराचंद तीनों बहुत दिनों तक प्रेमा के यहाँ अतिथि रहते हैं। एक दिन आखेट से लौटने पर ताराचंद, प्रेमा और मधुमालती को एक साथ झूला झूलते देख प्रेमा पर मोहित होकर मूर्छित हो जाता है। मधुमालती और उसकी सखियाँ उपचार में लग जाती हैं।

इसके आगे प्रति खंडित है। पर कथा के झुकाव से अनुमान होता है कि प्रेमा और ताराचंद का भी विवाह हो गया होगा

8.4.2 नूर मोहम्मद

नूर मुहम्मद - ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के दरबार में थे और 'सबरहद' नामक स्थान के रहने वाले थे जो जौनपुर जिले में जौनपुर आजमगढ़ की सरहद पर है। पीछे सबरहद से ये अपनी ससुराल भादों (जिला आजमगढ़) चले गए। इनके श्वसुर शमसुद्दीन को और कोई वारिस न था इससे वे ससुराल ही में रहने लगे। नूर मुहम्मद के भाई मुहम्मद शाह सबरहद ही में रहे। नूर मुहम्मद के दो पुत्र हुए-गुलाम हसनैन और नसीरुद्दीन। नसीरुद्दीन की वंशपरंपरा में शेख फिदाहुसैन अभी वर्तमान हैं जो सबरहद और कभी कभी भादों में भी रहा करते हैं। अवस्था इनकी ८० वर्ष की है।

नूर मुहम्मद फारसी के अच्छे आलिम थे और इनका हिंदी काव्यभाषा का भी ज्ञान और सब सूफी कवियों से अधिक था। फारसी में इन्होंने एक दीवान के अतिरिक्त 'रौजतुल हकायक' इत्यादि बहुत सी किताबें लिखी थीं जो असावधानी के कारण नष्ट हो गईं। इन्होंने ११५७ हिजरी (संवत् १८०१) में 'इंद्रावती' नामक एक सुंदर आख्यान काव्य लिखा जिसमें कालिंजर के राजकुमार राजकुँवर और आगमपुर की राजकुमारी इंद्रावती की प्रेमकहानी है। कवि ने प्रथानुसार उस समय के शासक मुहम्मदशाह की प्रशंसा इस प्रकार की है -

करौं मुहम्मदशाह बखानू। सूरज है देहली सुलतानू ॥
धरमपंथ जग बीच चलावा। निबर न सबरे सों दुख पावा ॥
बहुतै सलातीन जग केरे। आइ सहास बने हैं चेरे ॥
सब काहू पर दाया धरई। धरम सहित सुलतानी करई ॥

कवि ने अपनी कहानी की भूमिका इस प्रकार बाँधी है-

मन दृग सों इक राति मझारा। सूझि परा मोहिं सब संसारा।
देखेउँ एक नीक फुलवारी। देखेउँ तहाँ पुरुष औ नारी ॥

कवि ने जायसी के पहले के कवियों के अनुसार पाँच पाँच चौपाइयों के उपरांत दोहे का क्रम रखा है। इसी ग्रंथ को सूफी पद्धति का अंतिम ग्रंथ मानना चाहिए।

इनका एक और ग्रंथ फारसी अक्षरों में लिखा मिला है, जिसका नाम है 'अनुराग बाँसुरी'। यह पुस्तक कई दृष्टियों से विलक्षण है। पहली बात तो इसकी भाषा सूफी रचनाओं से बहुत अधिक संस्कृतगर्भित है। दूसरी बात है हिंदी भाषा के प्रति मुसलमानों का भाव। 'इंद्रावत' को रचना करने पर शायद नूरमुहम्मद को समय-समय पर यह उपालंभ सुनने को मिलता था कि तुम मुसलमान होकर हिंदी भाषा में रचना करने क्यों गए।' इसी से 'अनुराग बाँसुरी' के आरंभ में उन्हें यह सफाई देने की जरूरत पड़ी -

जानत है वह सिरजनहारा। जो किछु है मन मरम हमारा ।।
हिंदू मग पर पाँव न राखेउँ। का जौ बहुतै हिंदी भाखेउ ॥
मन इसलाम मिरिकलैं माँजेउँ। दीन जेंवरी करकस भाँजेउँ ॥
जहँ रसूल अल्लाह पियारा। उम्मत को मुक्तावनहारा ॥
तहाँ दूसरो कैसे भावै। जच्छ असुर सुर काग न आवै ॥

इसका तात्पर्य यह है कि संवत् १८०० तक आते-आते मुसलमान हिंदी से किनारा खींचने लगे थे। हिंदी हिंदुओं के लिये छोड़कर अपने लिखने-पढ़ने की भाषा वे विदेशी अर्थात् फारसी ही रखना चाहते थे जिसे 'उर्दू' कहते हैं, उसका उस समय तक साहित्य में कोई स्थान न था, इसका स्पष्ट आभास नूरमुहम्मद के इस कथन से मिलता है -

कामयाब यह कौन जगावा। फिर हिंदी भाखै पर आवा ॥
छाँड़ि पारसी कंद नवातें। अरुझाना हिंदी रस बातें ॥

8.5 सार - संक्षेप

निर्गुण काव्यधारा एक ऐसी भक्ति परंपरा है, जिसमें भगवान के रूप को निराकार और निराकार रूप में देखा गया है। इसमें यह विश्वास किया गया कि ईश्वर का कोई विशेष रूप या आकार नहीं होता। यह काव्यधारा धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से प्रकट हुई, जिसमें भगवान की उपासना को उसके रूप और आकार

से मुक्त किया गया। संत रैदास, सूरदास, सुन्दरदास और कबीर जैसे कवियों ने इस विचारधारा का प्रचार किया और भक्तिमार्ग को एक व्यापक रूप दिया। निर्गुण काव्य में कवियों ने भगवान को आत्मा के रूप में देखा और उसका अस्तित्व हर जगह मौजूद माना। वे ईश्वर के परम रूप को निराकार मानते थे, जो सभी प्राणियों के अंदर होता है। इस काव्यधारा के माध्यम से समाज को यह संदेश दिया गया कि भक्ति का वास्तविक उद्देश्य ईश्वर के निराकार रूप को पहचानना और उससे आत्मिक संबंध स्थापित करना है। इन कवियों ने पूजा और भक्ति को किसी मंदिर या मूर्तियों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उनका यह मानना था कि भगवान हर जगह व्याप्त है और उसे हर व्यक्ति अपने भीतर महसूस कर सकता है।

इस प्रकार, निराकार काव्यधारा ने भक्ति को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया और समाज में समानता, एकता और प्रेम का संदेश फैलाया।

8.6 मुख्य शब्द

- **निर्गुण** - जो भगवान के साकार रूप से परे होता है, निराकार और निराकार ईश्वर।
- **भक्ति** - ईश्वर के प्रति असीम प्रेम और श्रद्धा, विशेष रूप से भक्तिमार्ग में।
- **कबीर** - निर्गुण भक्ति के प्रमुख संत कवि, जिन्होंने समाज और धर्म में समानता की बात की।
- **संत** - धार्मिक व्यक्ति, जो भक्ति और आत्मा की साधना में विश्वास रखते हैं।
- **रैदास** - निर्गुण भक्ति के संत, जिन्होंने समाज में समानता और मानवता का संदेश दिया।

- **सूरदास** - भक्ति काव्य के महान कवि, जो भगवान श्री कृष्ण के प्रेम में रत रहे।
- **समरसता** - समानता और सामूहिक एकता की भावना, समाज में भक्ति के माध्यम से फैलाने का प्रयास।
- **एकात्मता** - आत्मा और परमात्मा का एक होने की भावना, जो भक्तिमार्ग का मूल तत्व है।

8.7 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. रविदास

उत्तर: 2. सबमें

उत्तर: 3. निर्गुण

उत्तर: 4. सुंदरविलाप

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. "भक्ति काव्य: एक नया दृष्टिकोण" - डॉ. सुधीर कुमार (प्रकाशन वर्ष: 2021)
2. "कबीर और उनके पदों का साहित्यिक विश्लेषण" - डॉ. अनिता सिंह (प्रकाशन वर्ष: 2020)
3. "संत काव्य और समाज" - डॉ. प्रवीण कुमार (प्रकाशन वर्ष: 2018)
4. "रैदास के पद: सांस्कृतिक और धार्मिक परिपेक्ष्य में" - डॉ. भावना मिश्रा (प्रकाशन वर्ष: 2022)

5. "सूरदास की रचनाओं का समकालीन अध्ययन" - डॉ. अभिषेक वर्मा (प्रकाशन वर्ष: 2023)
6. "हिंदी साहित्य में भक्ति का योगदान" - डॉ. शालिनी शर्मा (प्रकाशन वर्ष: 2020)

8.9 अभ्यास प्रश्न

1. कबीर के निर्गुण भक्ति के सिद्धांतों को समझाइए। उनके काव्य के मुख्य विषय क्या थे?

2. रैदास के काव्य में समाज में समानता और समान अधिकारों की अवधारणा को किस प्रकार व्यक्त किया गया है?

3. सूरदास के भक्ति काव्य में श्री कृष्ण के प्रति प्रेम और श्रद्धा के विषय में विस्तार से लिखिए।

4. भक्ति काव्य में संतों का योगदान समाज के लिए किस प्रकार महत्वपूर्ण था? उदाहरण के साथ समझाइए।

5. निर्गुण और सगुण भक्ति में अंतर स्पष्ट कीजिए। दोनों के सिद्धांतों को काव्य दृष्टि से समझाइए।

ब्लॉक - III

इकाई - 9

सगुण काव्यधारा के प्रमुख सम्प्रदाय

9.1 प्रस्तावना

9.2 अध्ययन के उद्देश्य

9.3 अद्वैत के विविध स्वरुप

9.4 वैष्णव संप्रदाय

9.5 रामानंद के गुरु शिष्य परंपरा

9.6 सार - संक्षेप

9.7 मुख्य शब्द

9.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.10 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

सगुण काव्यधारा के प्रमुख सम्प्रदाय भारतीय भक्ति साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन सम्प्रदायों ने धार्मिक और सामाजिक जीवन में भक्ति के माध्यम से सगुण ब्रह्म की उपासना को बढ़ावा दिया। स्वामी रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रतिपादन किया, जिसमें वे भक्ति को सर्वोच्च मानते थे और जीवों के उद्धार के लिए भगवान के सगुण रूप की उपासना का महत्व बताते थे। उनके सिद्धांतों के अनुसार, भक्ति का मार्ग जीवन के प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुला था, और उन्होंने जाति या सामाजिक स्थिति के भेदभाव से परे भक्तिपथ की प्रशंसा की। रामानंदजी ने राम के रूप में सगुण भगवान की उपासना को विशेष रूप से प्रचारित किया और इस प्रकार भक्ति मार्ग को जन-

जन तक पहुँचाया। रामानंदजी के शिष्य जैसे कबीर, रैदास, सेन आदि ने भक्ति को समाज के हर वर्ग में फैलाया और भक्ति आंदोलन को एक नई दिशा दी।

9.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- सगुण काव्यधारा के प्रमुख सम्प्रदायों और रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद के सिद्धांत।
- भक्ति के सगुण मार्ग में रामानुजाचार्य के योगदान।
- रामानंदजी की गुरु-शिष्य परंपरा और उनके शिष्यों द्वारा भक्ति आंदोलन के प्रसार की प्रक्रिया।
- रामानंद संप्रदाय के सिद्धांतों और उपासना विधियों का स्वरूप।
- रामानंद संप्रदाय द्वारा समाज में भक्ति के प्रसार की विधियाँ।
- रामानंदजी और उनके शिष्यों के काव्य योगदान का सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन।

9.3 अद्वैत के विविध स्वरुप

जगत् प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्यजी ने जिस अद्वैतवाद का निरूपण किया था वह भक्ति के सन्निवेश के उपयुक्त न था। यद्यपि उसमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता का भी स्वीकार था, पर भक्ति के सम्यक् प्रसार के लिये जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्य जी (सं० १०७३) ने खड़ा किया। उनके विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के ही अंश जगत् के सारे प्राणी हैं जो उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन होते

हैं। अतः इन जीवों के लिये उद्धार का मार्ग यही है कि वे भक्ति द्वारा उस अंशी का सामीप्यलाभ करने का यत्न करें। रामानुजजी की शिष्यपरंपरा देश में बराबर फैलती गई और जनता भक्ति मार्ग की ओर अधिक आकर्षित होती रही। रामानुजजी के श्री संप्रदाय में विष्णु या नारायण की उपासना है। इस संप्रदाय में अनेक साधु महात्मा बराबर होते गए

9.4 वैष्णव संप्रदाय

विक्रम की १४वीं शताब्दी के अंत में वैष्णव श्री संप्रदाय के प्रधान आचार्य श्री राघवानंदजी काशी में रहते थे। अपनी अधिक अवस्था होते देख वे बराबर इस चिंता में रहा करते थे कि मेरे उपरांत संप्रदाय के सिद्धान्तों की रक्षा किस प्रकार हो सकेगी। अंत में राघवानंदजी रामानंदजी को दीक्षा प्रदान कर निश्चित हुए और थोड़े दिनों में परलोक वासी हुए। कहते हैं कि रामानंदजी ने भारतवर्ष का पर्यटन करके अपने संप्रदाय का प्रचार किया।

9.5 रामानंद के गुरु शिष्य परंपरा

स्वामी रामानंदजी के समय के संबंध में कहीं कोई लेख न मिलने से हमें उसके निश्चय के लिये कुछ आनुषंगिक बातों का सहारा लेना पड़ता है। वैरागियों की परंपरा में रामानंदजी का मानिकपुर के शेख तकी पीर के साथ वादविवाद होना माना जाता है। ये शेख तकी दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी के समय में थे। कुछ लोगों का मत है कि ये सिकंदर लोदी के पीर (गुरु) थे और उन्हीं के कहने से उसने कबीर साहब को जंजीर से बाँधकर गंगा में डुबाया था। कबीर के शिष्य धर्मदास ने भी इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है-

साह सिकंदर जल में बोरे, बहुरि अग्नि परजारे।
मैमत हाथी आनि झुकाये, सिंहरूप दिखराये ॥
निरगुन कथैं, अभयपद गावैं, जीवन को समझाये ॥

काजी पंडित सबै हराए, पार कोउ नहिं पाये ॥

शेख तकी और कबीर का संवाद प्रसिद्ध ही है। इससे सिद्ध होता है कि रामानंदजी दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी के समय में वर्तमान थे। सिकंदर लोदी संवत् १५४६ से संवत् १५७४ तक गद्दी पर रहा। अतः इन २८ वर्षों के काल विस्तार के भीतर चाहे आरंभ की ओर, चाहे अंत की ओर-रामानंदजी का वर्तमान रहना ठहरता है।

कबीर के समान सेन भगत भी रामानंदजी के शिष्यों में प्रसिद्ध हैं। ये सेन भगत बाँधवगढ़ नरेश के नाई थे और उनकी सेवा किया करते थे। ये कौन बाँधवगढ़ नरेश थे, इसका पता 'भक्त माल रामरसिकावली' में रीवाँ नरेश महाराज रघुराजसिंह ने दिया है -

बाँधवगढ़ पूरब जो गायो। सेन नाम नापित तहँ जायो।
ताकी रहै सदा यह रीती। करत रहै साधुन सों प्रीती॥
तहँ को राजा राम बघेला। बरन्यो तेहि कबीर को चेला॥
करै सदा तिनकी सेवकाई। मुकर दिखावै तेल लगाई ॥

रीवाँ राज्य के इतिहास में राजा राम या रामचंद्र का समय संवत् १६११ से १६४८ तक माना जाता है। रामानंदजी से दीक्षा लेने के उपरांत ही सेन पक्के भगत हुए होंगे। पक्के भगत हो जाने पर ही उनके लिये भगवान् के नाई का रूप धरनेवाली बात प्रसिद्ध हुई होगी। उक्त चमत्कार के समय वे राजसेवा मे थे। अतः राजा रामचंद्र से अधिक से अधिक ३० वर्ष पहले यदि उन्होंने दीक्षा ली हो तो संवत् १५७५ या १५८० तक रामानंदजी का वर्तमान रहना ठहरता है। इस दशा में स्थूल रूप से उनका समय विक्रम की १५वीं शती के चतुर्थ और १६वीं शती के तृतीय चरण के भीतर माना जा सकता है।

'श्री रामार्चन पद्धति' में रामानंदजी ने अपनी पूरी गुरुपरंपरा दी है। उसके अनुसार रामानुजाचार्य जी रामानंदजी से १४ पीढ़ी ऊपर थे। रामानुजाचार्य का परलोकवास संवत् ११९४ में हुआ। अब १४ पीढ़ियों के लिये यदि हम ३०० वर्ष रखें तो

रामानंदजी का समय प्रायः वही आता है जो ऊपर दिया गया है। रामानंदजी का और कोई वृत्त ज्ञात नहीं।

तत्वतः रामानुजाचार्य जी के मतावलंबी होने पर भी अपनी उपासनापद्धति का उन्होंने विशेष रूप रखा। उन्होंने उपासना के लिये बैकुंठनिवासी विष्णु का स्वरूप न लेकर लोक में लीलाविस्तार करनेवाले उनके अवतार राम का आश्रय लिया। इनके इष्टदेव राम हुए और मूलमंत्र हुआ राम नाम। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इनके पूर्व देश में रामोपासना भक्त होते ही न थे। रामानुजाचार्यजी ने जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया उसके प्रवर्तक शठकोपांचार्य उनसे पाँच पीढ़ी पहले हुए हैं। उन्होंने अपनी 'सहस्रगीति' में कहा है - "दशरथस्य सुतं तं बिना अन्यशरणवान्नास्मि"। श्री रामानुज के पीछे उनके शिष्य कुरेशस्वामी हुए जिनकी 'पंचस्तवी' में राम की विशेष भक्ति स्पष्ट झलकती है। रामानंदजी ने केवल यह किया कि विष्णु के अन्य रूपों में 'रामरूप' को ही लोक के लिये अधिक कल्याणकारी समझ छाँट लिया और एक सबल संप्रदाय का संघटन किया। इसके साथ ही साथ उन्होंने उदारतापूर्वक मनुष्य मात्र को इस सुलभ सगुणभक्ति का अधिकारी माना और देशभेद, वर्णभेद, जातिभेद आदि का विचार भक्ति मार्ग से दूर रखा। यह बात उन्होंने सिद्धों या नाथपंथियों की देखादेखी नहीं की, बल्कि भगवद्-भक्ति के संबंध में महाभारत, पुराण आदि के कथित सिद्धांत के अनुसार की। रामानुज संप्रदाय में दीक्षा केवल द्विजातियों को दी जाती थी, पर स्वामी रामानंद ने रामभक्ति के द्वार सब जातियों के लिये खोल दिया और एक उत्साही विरक्त दल का संघटन किया, जो आज भी 'वैरागी' के नाम से प्रसिद्ध है। अयोध्या, चित्रकूट आदि आज भी वैरागियों के मुख्य स्थान हैं।

भक्तिमार्ग में इनकी उदारता का अभिप्राय यह कदापि नहीं है- जैसा कि कुछ लोग समझा और कहा करते हैं- कि रामानंद जी वर्णाश्रम के विरोधी थे। समाज के लिये वर्ण और आश्रम की व्यवस्था मानते हुए वे भिन्न-भिन्न कर्तव्यों की योजना स्वीकार करते थे। केवल उपासना के क्षेत्र में उन्होंने सबका समान

अधिकार स्वीकार किया। भगवद्भक्ति में वे किसी भेदभाव को आश्रय नहीं देते थे। कर्म के क्षेत्र में शास्त्रमर्यादा इन्हें मान्य थी; पर उपासना के क्षेत्र में किसी प्रकार का लौकिक प्रतिबंध ये नहीं मानते थे। सब जाति के लोगों को एकत्र कर रामभक्ति का उपदेश ये करने लगे और राम नाम की महिमा सुनाने लगे।

रामानंदजी के ये शिष्य प्रसिद्ध हैं - कबीरदास, रैदास, सेन नाई और गाँगरौनगढ़ के राजा पीपा, जो विरक्त होकर पक्के भक्त हुए।

रामानंदजी के रचे हुए केवल दो संस्कृत के ग्रंथ मिलते हैं- वैष्णवमताब्ज भास्कर और श्रीरामार्चनपद्धति। और कोई ग्रंथ इनका आज तक नहीं मिला है।

इधर सांप्रदायिक झगड़े के कारण कुछ नए ग्रंथ रचे जाकर रामानंदजी के नाम से प्रसिद्ध किए गए हैं- जैसे, ब्रह्मसूत्रों पर आनंद भाष्य और भगवद्गीताभाष्य - जिनके संबंध में सावधान रहने की आवश्यकता है। बात यह है कि कुछ लोग रामानुज परंपरा से रामानंदजी की परंपरा को बिल्कुल स्वतंत्र और अलग सिद्ध करना चाहते हैं। इसी से रामानंदजी को एक स्वतंत्र आचार्य प्रमाणित करने के लिये उन्होंने उनके नाम पर एक वेदांत भाष्य प्रसिद्ध किया है। रामानंदजी समय-समय पर विनय और स्तुति के हिंदीपद भी बनाकर गाया करते थे। केवल दो-तीन पदों का पता अब तक लगा है। एक पद तो यह है जो हनुमानजी की स्तुति में है -

आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्टदलन रघुनाथ कला की॥
जाके बल भर ते महि काँपै। रोग सोग जाकी सिमा न चाँपै॥

दूसरी बात तो उनके संबंध में कुछ लोग इधर-उधर कहते सुने जाते हैं वह यह है कि उन्होंने बारह वर्ष तक गिरनार या आबू पर्वत पर योगसाधना करके सिद्धि प्राप्त की थी। रामानंदजी के जो दो ग्रंथ प्राप्त हैं तथा उसके संप्रदाय में जिस ढंग की उपासना चली आ रही है उससे स्पष्ट है कि वे खुले हुए विश्व के बीच भगवान् की कला की भावना करने वाले विशुद्ध वैष्णव भक्तिमार्ग के अनुयायी

थे, घट के भीतर ढूँढ़नेवाले योगमार्गी नहीं। इसलिये योगसाधनावाली प्रसिद्धि का रहस्य खोलना आवश्यक है।

भक्तमाल में रामानंदजी के बारह शिष्य कहे गए हैं- अनंतानंद, सुखानंद, सुरसुरानंद, नरहर्यानंद, भावानंद, पीपा, कबीर, सेन, धना, रैदास, पद्मावती और सुरसरी।

अनंतानंदजी के शिष्य कृष्णदास पयहारी हुए जिन्होंने गलता (अजमेर राज्य, राजपूताना) में रामानंद संप्रदाय की गद्दी स्थापित की। यही पहली और सबसे प्रधान गद्दी हुई। रामानुज संप्रदाय के लिये दक्षिण में जो महत्व तोताद्रि का था वही महत्व रामानंदीसंप्रदाय के लिये उत्तर भारत में गलता को प्राप्त हुआ। यह 'उत्तर तोताद्रि' कहलाया। कृष्णदास पयहारी राजपूताने की ओर के दाहिमा (दाधीच्य) ब्राह्मण थे। जैसा कि आदिकाल के अंतर्गत दिखाया जा चुका है, भक्ति आंदोलन के पूर्व देश में- विशेषतः राजपूताने में- नाथपंथी कनफट योगियों का बहुत प्रभाव था जो अपनी सिद्धि की धाक जनता पर जमाए रहते थे। जब सीधे-साधे वैष्णव भक्तिमार्ग का आंदोलन देश में चला तब उसके प्रति दुर्भाव रखना उनके लिये स्वाभाविक था। कृष्णदास पयहारी जब पहले पहल गलता पहुँचे तब वहाँ की गद्दी नाथपंथी योगियों के अधिकार में थी। वे रात भर टिकने के विचार से वहीं धूनी लगाकर बैठ गए। पर कनफटों ने उन्हें उठा दिया। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस पर पयहारीजी ने भी अपनी सिद्धि दिखाई और वे धूनी की आग एक कपड़े में उठाकर दूसरी जगह जा बैठे। यह देख योगियों का महंत बाघ बनकर उनकी ओर झपटा। इस पर पयहारी जी के मुँह से निकला कि "तू कैसा गदहा है?" वह महंत तुरंत गदहा हो गया और कनफटों की मुद्राएँ उनके कानों से निकलकर पयहारीजी के सामने इकट्ठी हो गईं। आमेर के राजा पृथ्वीराज के बहुत प्रार्थना करने पर महंत फिर आदमी बनाया गया। उसी समय राजा पयहारी जी के शिष्य हो गए और गलता की गद्दी पर रामानंदी वैष्णवों का अधिकार हुआ।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न 1. स्वामी रामानंदजी का गुरु शिष्य परंपरा के संदर्भ में शेख तकी पीर के साथ वादविवाद _____ के समय हुआ था।

प्रश्न 2. कबीर के शिष्य _____ ने सिकंदर लोदी द्वारा कबीर को जंजीर से बाँधने की घटना का उल्लेख किया था।

प्रश्न 3. रामानंदजी का समय विक्रम की _____ शती के चतुर्थ और 16वीं शती के तृतीय चरण के बीच माना जाता है।

प्रश्न 4. स्वामी रामानंदजी का प्रमुख मंत्र _____ था।

9.6 सार - संक्षेप

सगुण काव्यधारा के प्रमुख सम्प्रदाय विशेष रूप से स्वामी रामानुजाचार्य और रामानंदजी द्वारा स्थापित किए गए थे। रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद का सिद्धांत प्रस्तुत किया, जिसमें भगवान और जीवात्मा के बीच एक विशेष संबंध बताया गया। उनके अनुसार, जीवों का उद्धार भक्ति द्वारा भगवान के सगुण रूप की उपासना से संभव है। रामानंदजी ने राम के सगुण रूप की उपासना को मुख्य रूप से प्रचारित किया और भक्ति के मार्ग को सभी जातियों और वर्गों के लिए सुलभ बनाया। वे समाज में जाति और वर्ण के भेदभाव से परे भक्ति की समानता का समर्थन करते थे। उनके शिष्य जैसे कबीर, रैदास, और सेन ने इस भक्ति मार्ग को जन-जन तक पहुँचाया, जिससे भक्ति आंदोलन को एक नया रूप मिला।

9.7 मुख्य शब्द

- अद्वैतवाद - ब्रह्म और जीव के बीच कोई भेद न मानने वाला सिद्धांत।
- विशिष्टाद्वैतवाद - ब्रह्म और जीव के बीच भेद होने का सिद्धांत, जिसमें ब्रह्म और जीव का संबंध विशेष माना जाता है।
- उद्धार - मुक्ति या मोक्ष प्राप्ति।
- सगुण भक्ति - भगवान के साकार रूप की पूजा और भक्ति।
- गुरुपरंपरा - गुरु से शिष्य तक धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान का संचार।
- वैराग्य - सांसारिक आकर्षणों से दूर रहकर भक्ति या योग में रत होना।
- उपासना - पूजा या साधना द्वारा भगवान का ध्यान करना।
- सिद्धांत - किसी विषय के बारे में स्थापित विचार या सिद्ध दृष्टिकोण।

9.8 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. सिकंदर लोदी

उत्तर: 2. धर्मदास

उत्तर: 3. 15वीं

उत्तर: 4. राम नाम

9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्वामी रामानंद: जीवन, दर्शन और भक्ति - डॉ. राधेश्याम शर्मा (2017)
2. रामानुजाचार्य और रामानंद: एक तुलनात्मक अध्ययन - प्रो. हरिवल्लभ त्रिपाठी (2018)
3. रामानंदजी और उनकी गुरु-शिष्य परंपरा - डॉ. सुधीर वर्मा (2020)
4. भक्ति आंदोलन: रामानंद और उनकी भूमिका - डॉ. सुमित्रा शंकर (2019)
5. रामानंद संप्रदाय और समाज का परिवर्तन - प्रो. नरेश कुमार (2021)

9.10 अभ्यास प्रश्न

1. रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद के सिद्धांत को समझाइए।
2. रामानंदजी के भक्ति मार्ग का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा?
3. रामानुजाचार्य और रामानंदजी के बीच भक्ति और उपासना पद्धतियों में क्या अंतर था?
4. रामानंदजी के प्रमुख शिष्यों के नाम बताइए और उनके योगदान पर चर्चा कीजिए।
5. रामानंदजी की उपासना पद्धति में सभी जातियों के लिए भक्ति के द्वार क्यों खोले गए थे?

इकाई -10

राममार्गी काव्यधारा

10.1 प्रस्तावना

10.2 अध्ययन के उद्देश्य

10.3 राम काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

10.4 रामानंद की विशेषताएं

10.5 गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

10.6 रामभक्ति शाखा की मुख्य विशेषताएं

10.7 सार - संक्षेप

10.8 मुख्य शब्द

10.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

10.10 अभ्यास प्रश्न

10.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.1 प्रस्तावना

रामकाव्य भारतीय काव्य परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो विशेष रूप से राम के जीवन, उनके आदर्शों और उनकी भक्तिभावना पर आधारित होता है। 'रामायण' के प्रमुख रूप से वाल्मीकि द्वारा रचित मूल रूप में राम के जीवन की गाथा को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें उन्हें आदर्श राजा, वीर योद्धा और धर्म के रक्षक के रूप में चित्रित किया गया है। बाद में गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के माध्यम से राम के चरित्र को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत किया। रामकाव्य का उद्देश्य न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्य प्रदान करना है, बल्कि सामाजिक और मानवीय मूल्य जैसे परहित, त्याग, प्रेम और मर्यादा को भी प्रसारित करना है। रामकाव्य में

भगवान राम को आदर्श व्यक्ति और लोकनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिनके जीवन और संघर्षों से हर व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है। रामकाव्य में प्रयुक्त काव्यशास्त्र, अलंकार, छंद और भावनाओं का समन्वय इसे एक विशिष्ट और प्रभावशाली काव्यधारा बनाता है।

10.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- रामकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, जैसे राम का आदर्श राजा, वीर योद्धा और विष्णु के अवतार के रूप में चित्रण।
- राम के प्रति भक्ति भाव, विशेष रूप से मर्यादा भक्ति और तुलसीदास के राम के व्यक्तित्व में भक्ति और दास्य भाव की भूमिका।
- राम के लोकनायक रूप की स्वीकृति और समाज के लोक कल्याण के लिए उनके चरित्र का महत्व।
- राम के जीवन से जुड़े मानव-मूल्य, जैसे परहित, त्याग और प्रेम के आदर्श, जो समाज को प्रेरित करते हैं।
- रामकाव्य के शिल्प, अलंकार, छंद, और काव्यशास्त्र का प्रभावी प्रयोग।
- राम के जीवन और आदर्शों की व्यापक समझ, जो साहित्य और समाज दोनों के लिए प्रेरणादायक है।

10.3 राम काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

'वाल्मीकि रामायण' में राम एक आदर्श राजा, एक वीर योद्धा एवं उदाल मानव के रूप में चित्रित किए गए है। पौराणिक काल तक आते-आते राम का स्वरूप अलौकिक होता गया। वह महापुरुष के धरातल से ऊपर उठकर विष्णु के अवतार अथवा परब्रह्म के अवतार रूप में स्वी त किए गए और उनके प्रति श्रा एवं

भक्तिभावना में रामभक्ति धारा के कवियों ने भी विष्णु के अवतार रूप में राम के प्रति अपने भक्ति भाव को प्रकट किया। गोस्वामी तुलसीदास के राम सर्वशक्तिमान, सौंदर्य की मूर्ती और शीलसंपन्न है। अपने इन्हीं कारण गुणों के लोकरक्षक और लोकमंगल के विधायक भी है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम है। धर्म के संरक्षण के लिए, असुरों के विनाश हेतु तथा सज्जनों की भाव-पीड़ा को मिटाने के लिए प्रभु स्वयं मनुष्य रूप में अवतरित हुए हैं। यद्यपि ब्रह्म निर्गुण निराकार है तथापि भक्त उपासना की सरलता से उसे सगुण, साकार रूप मे देखते हैं। ग्रहा को विभिन्न नामों से संयोधित करते है। रामभक्त कवियों का कथन है कि यद्यपि अनेक रूप और नाम है तथापि उन्होंने राम रूप को ही ग्रहण किया है-

रामलोकरंजक, जद्यपि प्रभु के नाम अनेका, श्रुति कह अध्कि एक तें एका।

राम सकल नामन्ह ते अध्का। होऊ नाथ अघ खग वन वध्का ।।

इस प्रकार रामकाव्यधारा के कवियों ने दशरथ पुत्र राम और सभी प्राणियों में रमण करने वाले राम द्धपरम तत्वऋ में अभेद स्थापित किया है। मर्यादित भक्ति का प्रसार रामकाव्य में भक्ति को ज्ञान और योग मार्ग से श्रेष्ठ घोषित किया गया। ष्णभक्त कवियों ने दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य, भक्ति भाव को अपनाया, पर रामभक्त कवियों ने मर्यादा भक्ति को ही अपना चरम ध्येय माना है। तुलसी दास स्पष्ट कहते है कि जिसके हृदय में राम की भक्ति भावना विद्यमान है उसे सपनू में भी दुःख प्राप्त नहीं हो सकता और यह भक्ति भी प्रभु की पा के बिना संभव नहीं -

राम भगति मन उर वस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ।।
चतुर सिरोमनि तेइ जग माही। जे मनि लागि सुजतन कराही ।।
सो मति जदपि प्रगट जग अहई। राम पा विनु नहिं कोउ लहई ।।

राम के प्रति इनकी भक्ति दास्य भाव से पूर्ण है, जिसमें मर्यादा की पूर्ण प्रतिष्ठा है। उनका मत है कि स्वामी के समक्ष सेवक सदा ही तुच्छ और हीन है, वे राम की महत्ता और अपनी हीनता स्वीकार करते हुए कहते हैं -

राम सो बड़ो है कौन, मोसौ कौन छोटो।
राम सो खरो है कौन, मोसौ कौन खोटो ।।

तुलसीदास भक्ति में किसी भी प्रकार के दुराव-छिपाव को भक्ति का विरोधी मानते है। मन, वचन कर्म तीनों का सरल एवं शु) होना भक्ति की पहली अनिवार्य शर्त है-

सूधे मन, सूधे वचन, सूध सब करतूति।
तुलसी सूध सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति।।

1. राम के लोकनायक रूप की स्वीकृति - धार्मिक क्षेत्र में जहाँ रामभक्त कवियों ने राम को परम आराध्य के रूप में स्वीकार करते हुए उनके प्रति अनन्य भक्ति भाव को प्रकट किया है, वहाँ दूसरी ओर समाज की माँग को देखते हुए राम के चरित्र को लोकनायक के रूप में प्रस्तुत किया है। धनुर्धारी राम लोक के संरक्षक है। तुलसीदास ने खलविनाशक राम के शक्तिशाली जीवन द्वारा लोकशिक्षा का पाठ पढ़ाया है। अत्याचार के बढ़ने पर विद्रोह होता है और कोई लोकनायक अत्याचार का अंत करके शांति के युग की स्थापना करता है। राम के द्वारा रावण का मारा जाना तथा रामराज्य की स्थापना द्वारा समाज को यह संदेश प्रेषित कियाा है कि वर्तमान में भी लोकनायक द्वार अत्याचारों का अंत अवश्य होगा। कोई भी ऐसा सामाजिक आदर्श नहीं, जिसका प्रतिनिधित्व राम न करते हो। इसलिए वे सही अर्थों में लोकनायक है।

निराश जनता के जीवन में आशा और विश्वास पैदा करने, आनंद का मधुर स्रोत बहाने तथा विपत्ति में सहायता करने के लिए राम-काव्य का निर्माण हुआ। आचार्य

रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, लोक में फैली दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनंद कला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भूत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता मे गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। यह विरोधाभासी आकर्षण ही राम को युगों-युगों के लिए लोकनायक के पद पर प्रतिष्ठित कर देता है।

4. मानव-मूल्यों की साधना - परहित सरिस धर्म नहिं भाई' तथा 'जे न मित्र दुःख होहि दुखारी, तिन्हहिं विलोकत पातक भारी' में विभीषण से राम द्वारा मानव मूल्यों से निर्मित विजय रथ की महत्ता का गायन करना एक प्रकार से तुलसीदास की मानव मूल्यों के प्रति निष्ठा का ही प्रमाण है। पारिवारिक जीवन की मर्यादा, त्याग और प्रेम के आदर्श रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र द्वारा जिन मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है वे समाज के लिए प्रेरणाखोत है। राम-काव्य वास्तव में मानव जीवन की समग्रता का काव्य है, इसमें जीवन के प्रति एक स्वस्थ और व्यापक दृष्टिकोण है।

5. लोकमंगल का विधान - रामभक्ति काव्यधारा का चरम लक्ष्य लोकमंगल का विधान करना ही था, क्योंकि इनके अराध् य राम का समग्र जीवन, संपूर्ण क्रियाकलाप लोकमंगल का विधान करने वाले ही है। सारे राम-काव्य का केंन्द्रीय आदर्श समाज की स्थापना तथा लोककल्याण की भावना को प्रसारित करना है। रामचरितमानस के उत्तरकांड में वर्णित रामराजय का सुखद वैभव वास्तव में कवि के इच्छित लोकरूप का साक्षात् चित्र है। आदर्श पुत्र, आदर्श राजा के रूप में राम आदर्श माता के रूप में कौसल्या, आदर्श भाई के रूप में लक्ष्मण तथा भरत आदर्श पत्नी के रूप में सीता, आदर्श सेवक के रूप में हनुमान, आदर्श मित्र के रूप में सुग्रीव के चरित्रों की स्थापना लोकमंगल का ही विधान करती है।

6. समन्वय की भावना - तत्कालीन समाज में सगुणोपासकों में भी परस्पर वैमनस्य एवं असहिष्णुता थी। शैवों और वैष्णवों में परस्पर शत्रुता का भाव

था। तुलसीदास जी ने राम द्वारा शिव की उपासना करवाकर और शिव के मुख से रामभजन न करने वाले मंदमति कहकर दोनों में ऐक्य स्थापित करने का प्रयास किया। राम का कथन 'शिव दोही मम दास कहावै। सो नर सपनेहु मोहि न भावै' तथा शिव का पार्वती से कथन 'गिरजा ते नर मंदमति जे न मजहि श्रीराम' शैवों और वैष्णवों में समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास है। दर्शन के क्षेत्र में भी द्वैत और अदैत के मध्य समन्वय स्थापित किया, इतना ही नहीं कलापक्ष में भी समन्वय का भाव देखा जा सकता है। अपने पूर्ववर्ती और समकालीन समस्त काव्य-शौलियों में राम-काव्य की रचना की। ब्रज एवं अवधी दोनों में काव्य-रचना करके दोनों भाषाओं को समान रूप से प्रश्रय दिया।

7. भावसौंदर्य एवं रसयोजना - जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के भावों, अनुभूतियों तथा संवेगों को रामभक्त कवियों ने मनोरम रसानुकूल अभिव्यक्ति प्रदान की है। जहाँ एक ओर वे एक भक्त के दैन्यभाव को लेकर भक्ति के पूर्ण परिपाक में समर्थ हुए है, वहीं दूसरी ओर वे सामाजिक संदर्भों में अनेक पारिवारिक मार्मिक प्रसंगों की कुशल अभिव्यक्ति करने में भी समर्थ हुए है। राम का अयोध्या-त्याग, चित्रकूट में राम-भगत मिलाप, लक्ष्मण मूर्च्छा आदि प्रसगों में भावों और मनोवेगों का प्रस्फुटन बड़े ही सुंदर एवं संजीव रूप में हुआ है। राम के जीवन का चित्रण जिस व्यापक परिवेश और आयाम में किया गया है, उसमें वैविध्य के कारण सभी रसों का सुंदर समावेश हुआ है। फिर भी राम-काव्य का अंगीरस शांत रस ही है। इसके अतिरिक्त श्रृंगार, वीर, वात्सल्य, करुण आदि रस भी सहज स्वाभाविक गरिमा से मंडित है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण मर्यादित है। परवर्ती काल में रामभक्ति से संबंधित रसिक संप्रदायों में राम और सीता का श्रृंगारिक वर्णन मर्यादित नहीं रह पाया है, परन्तु उनका साहित्यिक महत्त्व भी नगण्य ही है। यु)- प्रसंगों में वीर रस के साथ रौद्र, भयानक, वीभत्स और करुण रस की भी योजना राम-

काव्य में की गई है। राम जैसे मर्यादाशील, धीर और गंभीर व्यक्ति के साथ हास्य रस की कल्पना नहीं की जा सकती, किन्तु कवियों ने इनके लिए भी अवकाश निकाल लिया है। ६ गुनर्भग के समय परशुराम - लक्ष्मण संवाद, शूर्पणखा के विवाह-प्रस्ताव और उसकी नाक कटाने में, रावण-अंगद संवाद में हास्य रस के प्रसंग बन गए है। अतः राम-काव्य भाव सौंदर्य एवं रस संयोजन की दृष्टि से भी उत् ष्ट काव्य ही कहा जा सकता है।

8 आदर्श पात्र-योजना - राम-काव्य में सभी पात्रों का चित्रण एक विशिष्ट आदर्श और उद्देश्य को लेकर किया गया है। राम-काव्य का उद्देश्य है- 'असत्य पर सत की विजय', 'रावणत्व पर रामत्व की विजय'। असद् वृत्तियाँ कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हों, अंततः विजय सदृत्तियों कीहोती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु राम-काव्य में असवृतियों के पात्र रावण, बालि, मेघनाद की योजना की गई है तो सत्य के साक्षात् राम के जीवन एवं आदर्शों द्वारा समाज को सदृचियों को धारण करने की प्रेरणा कदी गई है। मानव, देवी-देवता, राक्षस, पशु-पक्षी, छोटे-बड़े सभी प्रकार के पात्र राम-काव्य में है। सदृत्तियों के प्रति सभी पात्रों का उद्देश्य असद् को सद् की ओर उन्मुख करना है। राम-रावण यु) में रावण की पराजय भी यही संकेत देती है कि असद् वृत्तियों का अंत अवश्य होता है।

9. अभिव्यंजना शिल्प सौन्दर्य :

- काव्यरूप - जहाँ ष्णभक्ति काव्य की रचना मुक्तक शैली में की गई, वहाँ राम-काव्य की रचना अधिकांशतः प्रबंध शैली में की गई है। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' प्रबंध शैली का उत् ष्ठ उदाहरण है। राम-काव्य के सभी कवि काव्यशास्त्र के विद्वान् और काव्य के समस्त रूपों से भली-भाँति परिचित थे। इसी कारण इस धारा समस्त काव्यशैलियों के सफल प्रयोग मिलते है। गीति शैली में 'रामगीतावली', 'रामध्यानमंजरी', 'दोहावली' आदि की रचना की गई तो नाटकीय संवाद

के रूप में 'हनुमन्नाटक', 'रामायण महानाटक' की भी नाटक शैली का विकास हुआ। 'जानकीमंगल', 'पार्वतीमंगल', 'भरतमिलाप', 'अंगदपैज' के रूप में खंड काव्य की रचना की तो रामललानहछु जैसी लोकशैली में काव्य-रचना करके लोकपरम्परा को भी सम्मानित किया। मध्यकाल में राम-काव्य की रचना व्रज एवं अवधी दोनों भाषाओं में की गई।

- अलंकार एवं छंद - राम-काव्य में अलंकारों का प्रयोग सहज, स्वाभाविक रूप में हुआ है। अलंकारों का प्रयोग कहीं भी चमत्कार प्रदर्शन हेतु नहीं किया गया। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, प्रतीक, निदर्शना, विरोधाभास आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग मिलता है। केशवदास की 'रामचंद्रिका' में पांडित्य प्रदर्शन हेतु शब्द-वमत्कार का ध्यान रखते हुए अलंकारों का प्रयोग किया गया है, जिससे काव्य में दुरूहता एवं त्रिमता आ गई है, परन्तु यह काव्य अपवाद है अन्यथा अन्य सभी काव्यों में अलंकार भावाभिव्यंजना में सहायक हुए है। छंदों में दोहा, चौहाई, रोला, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पय, कुंडलिया, घनाक्षरी आदि का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार राम-काव्य में एक ओर जहाँ भाव सौंदर्य उत् ष्ट कोटि का देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर उसयका अभिव्यंजनागत सौंदर्य उसके भाव को द्विगुणित कर देता है।

स्वप्रगति परीक्षण

नीचे दिए गए प्रत्येक कथन को ध्यानपूर्वक पढ़ें और सत्य अथवा असत्य का चयन करें -

प्रश्न 1. रामकाव्य में राम को केवल आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया गया है।

प्रश्न 2. रामकाव्य में राम के चरित्र द्वारा लोकमंगल की भावना को प्रसारित किया गया है।

प्रश्न 3. रामकाव्य में शैवों और वैष्णवों के बीच किसी प्रकार के वैमनस्य का समर्थन किया गया है।

प्रश्न 4. रामकाव्य में सभी पात्रों का चित्रण आदर्श और उद्देश्यपूर्ण है, जिसमें असत्य पर सत्य की विजय की प्रेरणा दी जाती

10.4 रामानंद की विशेषताएं

रामानन्द की विशेषताएँ स्वामी रामानन्द ने इस दार्शनिक क्षेत्र में तो कोई विसम्मति व्यक्त नहीं कि, परन्तु भक्ति के प्रायोगिक रूप में वे अवश्य रामानुज से भिन्न पड़ जाते है। ऐसी कुछ विशेषताएँ ये हैं -

1. उपासना के लिए वैकुण्ठ निवासी विष्णु की जगह लोक-लीला प्रदर्शक राम को गृहीत किया।

2. कुछ परिगणित लोगों के बदले उन्होने मनुष्य मात्र के लिए भक्ति का द्वार खोल दिया। रामानुज सम्प्रदाय में केवल द्विजातियों को ही दीक्षा दी जाती थी, इन्होने सबको दीक्षित किया। इसके अतिरिक्त एक विरक्त दल का भी संघटन किया जो 'वैरागी' नाम से प्रसि) है। समाज के लिये वर्णाश्रम व्यवस्था को मानते हुए भी उपासना के क्षेत्र में उन्होंने सबको समान अधिकार दिया था।

स्वामी रामानन्द ने जिस राम का रूप प्रतिष्टित किया था उनको अत्यंत व्यापक रूप में तुलसी द्वारा प्रतिष्ठित किया गया। इस सम्बन्ध में राम-भक्ति के साहित्य में प्रकाश डाला गया है। संत सम्प्रदाय मे भी रामानन्द के शिष्य होने के कारण कबीर ने राम नाम ग्रहण किया। किंतु राम की कथा की पंरपरा नई नहीं, साहित्य में बड़ी पुरानी है। जैन कवियों के अन्तर्गत कवि स्वंयभु भूपति ने भी राम कथाओं की रचना तेरहवीं शताब्दी के अंत में और चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में की। भगवत चंद्र मुनिलाल आदि कवि भी राम के सम्बन्ध में रचना पहले की कर चुके थे। हिन्दुओं को राम के उस रूप ने अत्यधिक प्रभावित किया

जिसने तुलसी दास की शील-शक्ति-सौदर्यमयी गरिमा को लोगों को उद्‌बोध कराया।

तुलसीदास जी के अतिरिक्त अग्रदास और नाभादास का नाम भी अत्यंत प्रमुखता से लिया जाता है। नाभादास के गुरु स्वामी अग्रदास भक्तमालके रचियता थे। ये रामानंद, जी के शिष्य अनंतानंद के शिष्य थे। श्री ष्णदास पैहारी ने गल्ता के नागपंथिथों के मठ पर अपनी विद्‌वत्ता के बल पर अधिकार पाया था। यह उन्ही के साथ रहा करते थे और रामभक्ति की रचना किया करते थे।

नाभादासजी अग्रदास के शिष्य तथा भक्तमाल के रचयिताा थे। कहा जाता है कि तुलसी दास से इनकी भेंट हुई थी। ये उनके समसामयिक थे। इनका जीवन-काल लगभग संवत् 1600 से 1680 तक है। कुछ लोग इन्हें हरिजन और कुछ लोग जाति का क्षत्रिय मानते है। इन्होने व्यापक दृष्टि से अपने समय के तथा पूर्ववर्ती 200 भक्तों के चमत्कारपूर्ण चरित्र 316 छप्पयों में लिखे है। नाभादास जी ने इस ग्रंथ का प्रणयन अत्यंत सूक्ष्म एवं संतुलित दृष्टि से किया है। यह भक्तों एवं हिन्दी के आचार्यो के बीच बड़ी श्रद्‌धा के साथ देखा जाता है।

राम-साहित्य की संक्षिप्त रूप-रेखा यहाँ दी जा रही है -

(अ) विषय - राम-संबंधी रचनाओं द्‌वारा दात्य भक्ति का प्रचार। व्यापक दृष्टिकोण द्‌वारा लोक-जीवन में कथाओं को आधार बना शील शक्ति सौंदर्यपूर्ण रामभक्ति का प्रसार।

(ब) मत विशिष्ट अद्‌वैत के अनुसार दास्य भक्ति का प्रतिपादन।

(स) शैली प्रबंध और मुक्तक।

(द) भाषा अवधी और ब्रज तथा कहीं-कहीं बुंदेलखंडी, भोजपुरी, अरबी तथा फारसी शब्दो का प्रयोग।

10.5 गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

सगुण भक्तिधारा की एक शाखा राम भक्ति धारा के रूप में प्रवाहित हुई जिसमें भगवान राम के सगुण रूप को प्रतिष्ठित किया गया। इस शाखा के सगुण कवि गोस्वामी तुलसीदास_हैं। उन्होंने आदिकवि वाल्मीकि द्वारा रचित महाकाव्य 'रामायण' को आधार बनाकर 'रामचरितमानस' की रचना 'अवधी' में की। उन्होंने जनमानस में इस बात को प्रतिष्ठित किया कि भगवान पापियों का संहार करने के लिए संसार में अवतार लेते ही हैं। आमजनों में इसे अपार लोकप्रियता मिली और यह घर-घर व चौपालों में पढ़ा जाने लगा। वस्तुतः तत्कालीन समय में लोग राजाओं के अत्याचार और विनाशकारी युद्धों से पीड़ित थे। राम भक्त कवियों की संख्या अपेक्षाकृत कम होने का मुख्य कारण 'रामचरितमानस' जैसे विशाल महाकाव्य का जनमानस में प्रतिष्ठित होना है, जिसके बाद राम के बारे में और लिख पाने के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता। संप्रति, भक्तिकाल के कवियों में तुलसीदास का नाम सर्वोपरि है।

10.6 रामभक्ति शाखा की मुख्य विशेषताएं

(1) इस शाखा के कवियों ने राम को विष्णु का अवतार मानते हुए राम और सीता को इष्ट माना और सेवक भाव से उनकी उपासना की।

(2) इस काव्यधारा का केन्द्रीय मूल्य 'सामाजिक मर्यादा' है, इसीलिए राम को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' के रूप में प्रतिष्ठित किया। राम का चरित्र, समाज के विभिन्न रिश्तों को मर्यादा में रहने की प्रेरणा देता है। वे अयोध्या के राजा है परन्तु सामन्तवादी चेतना व बहुपत्नीवाद के विरोधी हैं इसीलिए यह महाकाव्य शासन व्यवस्था में 'राम-राज्य' की कल्पना को प्रतिष्ठित करता है जहाँ मनुष्य दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से मुक्त होकर जीवन व्यतीत कर सकता है।

'दैहिक दैविक भौतिक तापा,
राम राज नहिं काहुहि व्यापा।'
- तुलसीदास

(3) लोकमंगल की कामना कर साहित्य का सृजन किया गया।

'परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई।' - तुलसीदास

(4) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'भारत का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय का अपार धैर्य लेकर आया हो।' तुलसी ने समन्वय की विराट चेष्टा की, जो उनके महाकाव्य 'रामचरितमानस' में देखा जा सकता है।

(5) इस काव्यधारा के कवियों ने न केवल अपने काल-खण्ड में समाज को दिशा प्रदान की बल्कि परवर्ती कालों में आजपर्यन्त उसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

(6) राम भक्त कवियों ने वर्ण व्यवस्था को समाज के संगठन का अनिवार्य अंग मानते हुए सिद्धान्तः समर्थन किया जबकि भक्तिमार्ग के ज्ञानमार्गी कवि कबीर, नानक व सूफी कवि जायसी ने वर्ण व्यवस्था का खंडन किया।

(7) इस काव्यधारा के कवियों की रचनाएँ अवधी व ब्रज में मिलती हैं।

(8) इस काव्यधारा के अधिकांश कवियों ने दोहा, चौपाई, कुण्डलिया, छप्पय, कवित्त, सवैया आदि छन्दों का प्रयोग किया। भावों के अनुरुप छन्दों का प्रयोग करने में वे अत्यन्त कुशल थे।

रामकाव्य भले ही परिमाण की दृष्टि से सीमित हो, किंतु संपूर्ण भारतीय समाज पर रामकाव्य का व्यापक प्रभाव पड़ा है। यह लोकधर्मी एवं लोकमंगल की साधना व आस्था का काव्य है। रामकाव्य का वैशिष्ट्य तो तुलसी के कृतित्व पर टिका हुआ है और तुलसी एक प्रकार से भारतीय जनमानस के आस्था-भाव, उसकी मूल्य-चेतना का प्रतीक बन गए हैं। सभी रसों के पूर्ण परिपाक, अनुभूतियों के मर्मस्पर्शी निरूपण के कारण जहां रामकाव्य भाव - सौंदर्य की दृष्टि से विशिष्ट है वहां प्रायः सभी प्रचलित काव्यरूपों के प्रयोग, भाषा पर असाधारण अधिकार, छंदों की निर्दोष प्रस्तुति आदि सभी दृष्टियों से रामकाव्य का साहित्यिक महत्व सुरक्षित है।

10.7 सार - संक्षेप

रामकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ राम के जीवन और उनके आदर्शों से संबंधित हैं, जिनमें भगवान राम को मर्यादा पुरुषोत्तम, आदर्श राजा, वीर योद्धा और लोकनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। राम के प्रति भक्तिभाव, उनके चरित्र का आदर्श रूप और उनके द्वारा लोककल्याण की दिशा में किए गए कार्यों को इस काव्यधारा में प्रमुखता से दिखाया गया है। तुलसीदास ने राम को परम आराध्य के रूप में चित्रित करते हुए उनके जीवन के प्रत्येक पहलू को समाज के लिए प्रेरणादायक बताया है। रामकाव्य में भक्तिमार्ग, मानव-मूल्यों की साधना, लोकमंगल और समन्वय की भावना को प्रमुख स्थान दिया गया है। इसके अलावा, रामकाव्य के माध्यम से विभिन्न भावों और रसों का सुंदर रूप से चित्रण किया गया है, जिसमें शांति, करुणा, वीरता, और श्रृंगार आदि प्रमुख हैं। इस काव्यधारा में आदर्श पात्रों की योजना और अभिव्यंजना शिल्प सौंदर्य भी रामकाव्य को विशिष्ट बनाता है।

10.8 मुख्य शब्द

- रामकाव्य: राम के जीवन और कार्यों पर आधारित काव्य, जिसमें उनके चरित्र और धर्म की महिमा का वर्णन किया गया है।
- लोकनायक: समाज में आदर्श प्रस्तुत करने वाला नेता, जैसे राम जो अपनी नीतियों और कृत्यों से समाज का मार्गदर्शन करते हैं।
- भक्तिभाव: भगवान के प्रति श्रद्धा और भक्ति का भाव।
- लोककल्याण: समाज का भला करना, जैसे राम ने अपने जीवन में लोकमंगल के लिए कार्य किए।

- भक्तिमार्ग: भगवान की भक्ति के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग।
- मानव-मूल्य: मानवीय आचार-व्यवहार और नैतिकता, जो राम के जीवन में प्रमुख रूप से दिखाए गए।
- लोकमंगल: समाज का भला और कल्याण, जो राम के जीवन और कार्यों से प्रेरित है।
- समन्वय: विभिन्न मतों और विश्वासों को एक साथ लाने का प्रयास, जैसे तुलसीदास ने शैव और वैष्णव के बीच समन्वय किया।

10.9 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. असत्य

उत्तर: 2. सत्य

उत्तर: 3. असत्य

उत्तर: 4. सत्य

10.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी कविता की प्रवृत्तियाँ - लेखक: डॉ. विद्यानिवास मिश्र, भारतीय साहित्य मंथन, 2005
2. रामकाव्य का समकालीन मूल्यांकन - लेखक: डॉ. अरविंद त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, 2012
3. रामचरितमानस का आधुनिक परिप्रेक्ष्य - लेखक: डॉ. शंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, 2015
4. हिंदी साहित्य और सांस्कृतिक चेतना - लेखक: डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, साहित्य भवन, 2018

5. हिंदी काव्यशास्त्र का विकास - लेखक: डॉ. शिवकुमार शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, 2020
6. रामकाव्य की साहित्यिक परंपरा - लेखक: डॉ. रेखा मिश्रा, वाणी प्रकाशन, 2021

10.11 अभ्यास प्रश्न

1. रामकाव्य में राम के आदर्शों का वर्णन किस प्रकार किया गया है? उनके व्यक्तित्व के कौन से पहलू सबसे प्रमुख हैं?
2. तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में किन-किन रसों का उपयोग किया है? इन रसों का रामकाव्य की सुंदरता पर क्या प्रभाव पड़ा है?
3. 'रामराज्य' की परिभाषा दीजिए। रामराज्य में समाज के क्या आदर्श स्थापित थे, और उनका आज के समाज पर क्या प्रभाव हो सकता है?
4. रामकाव्य के द्वारा समाज में आदर्शों का प्रचार-प्रसार कैसे किया गया? इसके उदाहरण दीजिए।
5. 'रामचरितमानस' में वर्णित पात्रों की विशेषताएँ और उनके समाज पर प्रभाव पर चर्चा करें।

इकाई - 11

कृष्ण काव्यधारा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 कृष्ण काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
11.4 कृष्ण काव्यधारा का स्वरुप
11.5 सूरदास दास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
11.6 कृष्णभक्ति शाखा की मुख्य विशेषताएं
11.7 सार - संक्षेप
11.8 मुख्य शब्द
11.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
11.10 अभ्यास प्रश्न
11.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में कृष्ण काव्यधारा की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें राधाकृष्ण की लीलाओं का मनोहारी चित्रण, भक्ति की गहन अनुभूतियों, दार्शनिक विचारधारा, रस विवेचन, तथा प्रकृति सौंदर्य का सजीव वर्णन शामिल है। कृष्णभक्त कवियों ने काव्य के माध्यम से ब्रजभाषा का परिष्कार किया और संगीत व छंद की माधुर्यपूर्ण परंपरा को बढ़ावा दिया। इस काव्यधारा में सूरदास जैसे कवियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है, जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व से कृष्ण भक्ति साहित्य समृद्ध हुआ। इस इकाई के माध्यम से

कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख पहलुओं और सांस्कृतिक, साहित्यिक योगदान को समझने का अवसर मिलेगा।

11.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- कृष्ण काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, जैसे राधाकृष्ण की लीलाओं का चित्रण, भक्तिभावना और शुद्धाद्वैतवाद पर आधारित दार्शनिक दृष्टिकोण।
- वात्सल्य और श्रृंगार रस का प्रभावी प्रस्तुतीकरण और प्रकृति सौंदर्य की विशिष्ट अभिव्यक्ति।
- ब्रजभाषा के विकास में कृष्ण काव्यधारा के कवियों का योगदान।
- संगीत और छंद के महत्व के साथ-साथ अलंकारों का सार्थक प्रयोग।
- सूरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व, उनके योगदान, और उनके द्वारा स्थापित कीर्तन सेवा की परंपरा।
- कृष्ण काव्यधारा के साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रभाव का समग्र विश्लेषण।

11.3 कृष्ण काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

इस काव्यधारा के कवियों का मुख्य विषय राधाकृष्ण की लीलाएं हैं। मुख्यतः निम्न प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं -

1. राधाकृष्ण की लीलाओं का चित्रण इन कवियों ने अपने ईष्ट कृष्ण का गुणगान किया है। कृष्ण की बाल लीलाओं और राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। राधा-कृष्ण के प्रेम एवं विरह के चित्र सहज ही देखे जा सकते हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण के चरित्र की रूपरेखाओं में हिंदी कवियों ने नया रंग भरकर उसे आकर्षक एवं मधुर बना दिया है। अपने युग एवं वातावरण के अनुसार इन कवियों ने

अनेक नवीन प्रसंगों की भी उद्भावना की है जो रस दृष्टि में सहायक सिद्ध होते हैं; यथा-

शोभित कर नवनीत लिए
घुटुवन चलन रेनु तनुमंडित मुखदधि लेप किए।

2. भक्तिभावना कृष्णभक्ति के सभी आचार्यों ने शंकर के मायावाद का खंडन हिंदी साहित्य का भां किया और जीवन और जगत की सत्यता तथा ईश्वर भक्ति की पुनः स्थापना की। इस प्रेमाभक्ति के अंतर्गत नवधा भक्ति के दर्शन होते हैं। हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों ने भक्ति की व्याख्या नहीं की, किंतु उसकी महिमा का बार-बार वर्णन किया है। सूरदास जैसे कवियों ने निर्गुण पर सगुण की जीत दिखाई है-

अविगत गति कछु कहत न आवै
सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन लीलापद गावै।

सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप में सरल और सीधा मार्ग है तथा यह मार्ग परमानंद तक ले जाता है। सूरदास, कुंभदास, मीरा आदि प्रारंभिक कवियों में भक्ति भावना का जैसा उन्मेष मिलता है, वह परवर्ती कृष्ण कवियों कृष्णदास, नंददास में नहीं मिलता।

3. दार्शनिकता कृष्णभक्त कवियों के दार्शनिक विचार शुद्धाद्वैतवाद के अंतर्गत आते हैं। तात्विक दृष्टि से इस शुद्धाद्वैतवाद को 'ब्रह्मवाद' अथवा 'पुष्टिमार्ग' तथा अविकृत परिणामवाद भी कहा जाता है। शुद्धाद्वैतवाद में शुद्ध का अर्थ है माया के संबंध से रहित। इस सिद्धांत के अनुसार माया के संबंध रहित ब्रह्म ही जगत का कारण और कार्य है। यहां ब्रह्मवाद का अर्थ है सब कुछ ब्रह्म ही है। विकृत परिणामवाद का अभिप्राय है कि जगत ब्रहा का विकाररहित परिणाम है। सूरदास के शब्दों में -

मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया।
मिथ्या है यह देह कहां क्यों हरि बिसराया ।।

संसार के बंधनों से छूटकर आनंद प्राप्त करने की अवस्था वैष्णव दर्शन के अनुसार मुक्ति की अवस्था है। पुष्टिमार्ग में भक्ति के प्रकार और भगवान की इच्छा के अनुसार भक्त जीव को मुक्ति का आनंद मिलता है। पुष्टिमार्ग के अनुसार 'सालोक्य', 'सामीप्य', 'सारूप्य' एवं 'सायुज्य' नामक चार प्रकार की युक्तियों का संकेत है। सूरदास और नंददास ने लयात्मक एवं सायुज्य मुक्ति का वर्णन संयोग और वियोग श्रृंगार के अंतर्गत किया है।

4 रस विवेचन - कृष्णभक्त कवियों ने मुख्यतः वात्सल्य और श्रृंगार को प्रस्तुत किया है। भक्ति भी दिखाई देती है। श्रृंगार को रसराजत्व प्रदान करने में इन कवियों का प्रमुख योगदान है। ईश्वर के शील, शक्ति और सौंदर्य रूपों में से इन कवियों का मन सौंदर्य में रमा है। फलतः दोनों बाल्य और यौवन की झाकियां मनोयोग से चित्रित की हैं। कल्पना के दिव्य सांचे में ढलकर ये भावों का सौंदर्य खड़ा करते हैं और हृदय की तरंगें आनंद विधान की सृष्टि करती हैं। ये कवि अपनी एकांतिक साधना में निमग्न रहने वाले कवि थे। वात्सल्य वर्णन में तो इन कवियों को कोई टक्कर दे ही नहीं सकता। जैसा कि शुक्ल जी ने सूरदास के विषय में कहा है- "वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्‌घाटन सूर ने अपनी बंद आंखों से किया है, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का वे कोना-कोना झांक आए हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है -

खीजत जात माखन खात
अरुण लोचन भौंहें टेढ़ी बार-बार रमांत।

वात्सल्य और श्रृंगार वर्णन में इन कवियों को महारथ हासिल है। वालोचित चेष्टाओं, लीलाओं और श्रृंगार की विविध मनोदशाओं का इतना रोचक और मार्मिक वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। भ्रमरगीत में उपालंभ और वाग्वैदग्ध्य अपने चरम पर दिखता है, इस प्रकार श्रृंगार के वियोग पक्ष का भी मार्मिक अंकन है- 'मधुबन तुम कत रहत हरे' तथा 'बिनु गोपाल वैरिन भई कुंजै' कहकर गोपियों की व्यथा को कवि ने सहज ही चित्रित किया है। गोपियों के माध्यम से निर्गुण

पर सगुण की विजय भी कवियों ने विशेषकर सूरदास ने दर्शाई है। इसके अतिरिक्त करुण, वीर, भयानक, अद्भुत और शांत रस भी विशेष प्रसंग आने पर आ गए हैं।

5. प्रकृति सौंदर्य प्रकृति को इन कवियों ने प्रमुख रूप से चित्रित किया है। प्रकृति सौंदर्य की संवेदना को इन कवियों ने सघन अनुभूतियों से व्यक्त किया है। प्रकृति सदैव इनके साथ ही रही है। प्रकृति और मानव का अनादि साहचर्य इस काव्य की प्रमुख विशेषता है। प्रकृति का उद्दीपन रूप सर्वाधिक चित्रित किया गया है। बाल लीलाओं से लेकर लोकमंगलकारी कार्यों की कर्मभूमि प्रकृति ही रही है। प्रकृति में घूमने वाले गोपाल कृष्ण का संपूर्ण गोलोक प्रकृति वैभव की छटा है। इस प्रकृति का एक चित्र प्रस्तुत है-

कोकिल कीर सदा तंह रोर
सदा रूप मनमथ चित चोर।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न 1. कृष्ण काव्यधारा में मुख्य विषय _____ की लीलाओं का चित्रण है।

प्रश्न 2. कृष्णभक्त कवियों ने _____ भक्ति की महिमा का बार-बार वर्णन किया है।

प्रश्न 3. कृष्ण काव्यधारा में मुख्य रूप से _____ और _____ रस का चित्रण किया गया है।

प्रश्न 4. कृष्ण काव्यधारा में प्रकृति और मानव का _____ साहचर्य प्रमुख विशेषता है।

11.4 कृष्ण काव्यधारा का स्वरुप

हिंदी कृष्णकाव्य में प्रायः मुक्तक काव्य को प्रधानता मिली है। मूलतः मुक्तक रचना का प्रमुख कारण गेय पद परंपरा की प्रवृत्ति होना है, जिससे कवियों को अंतर्मुखी वृत्तियों को काव्य में ढालने का अधिक अवसर मिला। अधिकांश कवि संगीत के ज्ञाता थे। इस कारण गीतिकाव्य परंपरा बहुत लोकप्रिय हुई।

1. काव्यभाषा ब्रजभाषा को साहित्य में सम्मान दिलाने का श्रेय कृष्णभक्त कवियों को जाता है। ब्रजभाषा का काव्यभाषा के रूप में इन कवियों ने ऐसा विकास और परिष्कार किया कि उसकी सर्जनात्मक संभावनाएं जनता को मुग्ध करने लगीं। इनका शब्दभंडार भी असीमित है। इसके अतिरिक्त संस्कृत, अपभ्रंश के शब्दों का भी प्रयोग है। ब्रजभाषा के नाद सौंदर्य ने इस काव्य के हिंदी साहित्य का ध्वनि माधुर्य का विस्तार किया है।

2. प्रतीक और बिंब इन कवियों ने प्रतीकों और बिंबों का भी विधान किया है। नाम प्रतीक, स्थान प्रतीक, दार्शनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, उत्सव पूजा से संबंधित प्रतीक इस काव्य में भरपूर हैं। गोपियां जीव की प्रतीक हैं और गोलोक इंद्रियों का। मुरली ब्रह्म की नादशक्ति का प्रतीक है तो ब्रज कृष्ण की ब्रजन यात्रा का। ब्रज गोलोक का प्रतीक है। मनुष्य मन के भीतर ही गोलोक (ब्रज) है। कवियों की अभिव्यंजना शक्ति का विकास बिंबों में दिखता है। उदाहरण प्रस्तुत है-

शोभित कर नवीनत लिए
घुटुवन चलत रेनु तनुमंडित मुखदधि लेप किए।

लोकभाषा में लोकबिंबों का यह संसार लोकहृदय की जीवंत संवेदना का रहस्य खोल देता है।

3. संगीत, छंद और लय कृष्णभक्ति साहित्य में संगीतात्मकता और लयात्मकता प्रधान है। ये कवि काव्यकला के साथ संगीत कला के पारंगत थे। इन कवियों ने कीर्तन संग्रह की भी परंपरा चलाई। अनेक शास्त्रीय राग- रागनियों का निर्माण किया। लय को आधार बनाकर इन कवियों ने अनेक प्रकार के छंदों में कविता लिखी। रसखान ने कवित्त और सवैया छंद में रचना की। रोला, दोहा, चौपाई,

सरसी, गीतिका, लावनी आदि का भी प्रयोग किया गया है। इस तरह कृष्ण भक्ति परंपरा गेय छंदों को आधार बनाकर विकसित हुई।

4. अलंकार विधान इन कवियों ने अलंकारों का प्रयोग हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिए किया है। शब्दालंकार और अर्थालंकारों की इनमें बहुलता है। इनका ध्यान मिथ्या आडंबर में नहीं था, न ही चमत्कार प्रदर्शन इनका उद्देश्य था। उपमा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, वक्रोक्ति, मालोपमा, उत्प्रेक्षा अलंकार का खूब प्रयोग है। हिंदी के कृष्णभक्त कवियों में नए-नए उपमानों का अभाव नहीं है, अतः इनका अलंकार विधान सजीव और सार्थक है।

इन कवियों की कविता में भक्ति, संगीत, कला और दर्शन का गहन विस्तार है और सामाजिक सांस्कृतिक अनुभवों की एक विशेष सौंदर्य दृष्टि है। राधाकृष्ण की कथाओं में मानव मन की मूल वृत्तियों प्रवृत्तियों मानसिक दशाओं और जीवन के कार्य व्यापारों को नया अर्थ मिला है। इन कवियों ने सरस सगुणोपासना और मधुर रस से सिक्त अवतारवाद को जनता के बीच स्थापित किया तथा जनता की निराशा को नष्ट किया।

11.5 सूरदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(१) सूरदासजी - सूरदासजी का वृत्त 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में केवल इतना ज्ञात होता है कि ये पहले गऊघाट (आगरे और मथुरा के बीच) पर एक साधु या स्वामी के रूप में रहा करते थे और शिष्य किया करते थे। गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी का मंदिर बन जाने के पीछे एक बार वल्लभाचार्यजी गऊघाट पर उतरे तब सूरदास उनके दर्शन को आए और उन्हें अपना बनाया एक पद गाकर सुनाया। आचार्यजी ने उन्हें अपना शिष्य किया और भागवत् की कथाओं को गाने योग्य पदों में करने का आदेश दिया। उनकी सच्ची भक्ति और पदरचना की निपुणता देख वल्लभाचार्यजी ने उन्हें अपने श्रीनाथजी के मंदिर की कीर्तन सेवा सौंपी। इस मंदिर को पूरनमल खत्री ने गोवर्द्धन पर्वत पर संवत् १५७६ में पूरा बनवाकर

खड़ा किया था। मंदिर पूरा होने के ११ वर्ष पीछे अर्थात् संवत् १५८७ में वल्लभाचार्य जी की मृत्यु हुई।

श्रीनाथजी के मंदिर निर्माण के थोड़ा ही पीछे सूरदासजी वल्लभ संप्रदाय में आए, यह 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है -

'औरहु पद गाए तब श्री महाप्रभुजी अपने मन में विचारे जो श्रीनाथ जी के यहाँ और तो सब सेवा को मंडान भयो है, पर कीर्तन को मंडान नाही कियो है; तातें अब सूरदास को दीजिए।'

अतः संवत् १५८० के आसपास सूरदासजी वल्लभाचार्य जी के शिष्य हुए होंगे और शिष्य होने के कुछ ही पीछे उन्हें कीर्तनसेवा मिली होगी। तब से वे बराबर गोवर्द्धन पर्वत पर ही मंदिर की सेवा करते थे, इसका स्पष्ट आभास 'सूरसारावली' के भीता नौजूद है। तुलसीदास के प्रसंग में हम कह आए हैं कि भक्त लोग कभी-कभी किसी ढंग अपने को अपने इष्टदेव की कथा के भीतर डालकर उनके चरणों तक अपने पहुँचने की भावना करते हैं। तुलसी ने तो अपने को कुछ प्रच्छन्न रूप में पहुँचाया है, पर सूर ने प्रकट रूप में। कृष्ण जन्म के उपरांत नंद के घर बराबर आनंदोत्सव हो रहे हैं। उसी बीच एक ढाढ़ी आकर कहता है-

नंद जू मेरे मन आनंद भयो, हौं गोवर्धन तें आयो।
तुम्हरे पुत्र भयो, मैं सुनि कै अति आतुर उठि धायो ।
जब तुम मदन मोहन करि टेरौं, यह सुनि कै घर जाऊँ।
हौं तौ तेरे घर की ढाढ़ी, सूरदास मेरो नाऊँ ॥

वल्लभाचार्यजी के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ के सामने गोवर्द्धन की तलहटी के पारसोली ग्राम में सूरदास की मृत्यु हुई, इसका पता भी उक्त 'वार्ता' से लगता है। गोसाई विठ्ठलनाथ की मृत्यु सं० १६४२ में हुई। इसके कितने पहले सूरदास का परलोकवास हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

'सूरसागर' समाप्त करने पर सूर ने जो 'सूरसागर सारावली' लिखी है उसमें अपनी अवस्था ६७ वर्ष की कही है -

गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन ॥

तात्पर्य यह कि ६७ वर्ष के कुछ पहले वे 'सूरसागर' समाप्त कर चुके थे। सूरसागर समाप्त होने के थोड़ा ही पीछे उन्होंने 'सारावली' लिखी होगी। एक और ग्रंथ सूरदास का 'साहित्य लहरी' है, जिसमें अलंकारों और नायिकाभेदों के उदाहरण प्रस्तुत करनेवाले कूट पद हैं। इसका रचनाकाल सूर ने इस प्रकार व्यक्त किया है -

मुनि सुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनंद को लिखि सुबल संवत पेख।

इसके अनुसार संवत् १६०७ में 'साहित्य लहरी' समाप्त हुई। यह तो मानना ही पड़ेगा कि साहित्य क्रीड़ा का यह ग्रंथ 'सूरसागर' से छुट्टी पाकर ही सूर ने संकलित किया होगा। उसके दो वर्ष पहले यदि 'सूरसारावली' की रचना हुई, तो कह सकते हैं कि संवत् १६०५ में सूरदासजी ६७ वर्ष के थे। अब यदि उनकी आयु ८० या ८२ वर्ष की मानें तो उनका जन्मकाल सं० १५४० के आसपास तथा मृत्युकाल सं० १६२० के आसपास ही अनुमित होता है।

'साहित्यलहरी' के अंत में एक पद है जिसमें सूर अपनी वंशपरंपरा देते हैं। उस पद के अनुसार सूर पृथ्वीराज के कवि चंदबरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट थे। चंद कवि के कुल में हरिचंद हुए जिनके सात पुत्रों में सबसे छोटे सूरजदास या सूरदास थे। १ शेष ६ भाई जब मुसलमानों से युद्ध करते हुए मारे गए तब अंधे सूरदास बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकते रहे। एक दिन वे कुएँ में गिर पड़े और ६ दिन उसी में पड़े रहे। सातवें दिन कृष्ण भगवान् उनके सामने प्रकट हुए और उन्हें दृष्टि देकर अपना दर्शन दिया। भगवान् ने कहा कि दक्षिण के एक प्रबल ब्राह्मण कुल द्वारा शत्रुओं का नाश होगा और तू सब विद्याओं में निपुण होगा। इस पर सूरदास ने वर माँगा कि जिन आँखों से मैंने आपका दर्शन किया उनसे अब और कुछ न देखूँ और सदा आपका भजन करूँ। कुएँ से जब भगवान् ने उन्हें बाहर

निकाला तब वे ज्यों के त्यों अंधे हो गए और ब्रज में आकर भजन करने लगे। वहाँ गोसाईंजी ने उन्हें 'अष्टछाप' में लिया।

11.6 कृष्णभक्ति शाखा की मुख्य विशेषताएं

'कृष्ण काव्य' सगुण भक्तिधारा की एक शाखा है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण को आराध्य मानकर रचनाएँ लिखी गई है। मध्यकालीन सगुण भक्ति के आराध्य देवों में भगवान श्रीकृष्ण का स्थान सर्वोच्च है। संस्कृत में जयदेव ने गीत-गोविंद की रचना करके कृष्ण की मधुर भक्ति की परंपरा शुरू की थी जो हिन्दी साहित्य में भी चलती रही।

कृष्ण भक्ति धारा का प्रवर्तन वल्लभाचार्य ने किया। रामभक्ति धारा और कृष्ण भक्ति धारा में एक बड़ा अंतर यह है कि राम भक्त स्वयं को राम का सेवक या दास समझते थे जबकि कृष्णभक्त स्वयं को कृष्ण का सखा मानते थे। कृष्णभक्त कवियों ने भक्त और भगवान के बीच प्रेमी-प्रेमिका के संबंध को अपने काव्य का आधार बनाया।

मुख्य विशेषताएँ -

(1) कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन विशेष रूप से किया है। सूरदास ने कृष्ण के लोकरंजनी रुप को अपने काव्य का आधार बनाया।

(2) कृष्ण के प्रेम संबंधी चित्रण के साथ ही उनके वात्सल्य रूप का मनोहारी चित्रण कृष्ण काव्य में मिलता है।

(3) कृष्ण भक्ति धारा के प्रमुख प्रतिनिधि कवि सूरदास ने 'साहित्य लहरी' में नायिका भेद एवं अलंकार का वर्णन करते हुए नीति तत्व का समावेश किया है। इसी तरह नन्ददास ने 'रस मंजरी' में नायिका भेद का वर्णन किया है।

(4) सूरदास, मीरा आदि की रचनाओं में प्रेमचित्रण में स्वातंत्र्य का भाव अन्तर्निहित है।

(5) कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में जहाँ-जहाँ राधा- कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन किया है वहाँ-वहाँ ब्रजभूमि के सौंदर्य का मनोहारी चित्रण किया है।
(6) कृष्णभक्ति काव्य धारा में कृष्ण की बाल लीला के चित्रण में जहाँ वात्सल्य रस की प्रधानता है वहीं प्रणय- क्रीड़ाओं के चित्रण में श्रृंगार रस की प्रधानता है।
(7) कृष्णभक्ति काव्य की भाषा ब्रज है। सूरदास ने अपने काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। ब्रज भाषा में लिखे उनके काव्य भाषा के माधुर्य, सरसता, कोमलता आदि गुणों के कारण 'ब्रज' काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

11.7 सार - संक्षेप

इस इकाई में कृष्ण काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है, जिसमें राधाकृष्ण की लीलाओं का मनोहारी चित्रण, भक्तिभावना, शुद्धाद्वैतवाद पर आधारित दार्शनिकता, वात्सल्य और श्रृंगार रस की प्रमुखता, तथा प्रकृति सौंदर्य की अद्भुत अनुभूति को स्थान मिला है। इन कवियों ने ब्रजभाषा को काव्य भाषा के रूप में सशक्त किया, जिससे इसकी मधुरता और गेयता में वृद्धि हुई। इस काव्यधारा में संगीत और लय का सामंजस्य है, जो कीर्तन परंपरा को भी समृद्ध करता है। सूरदास जैसे कवियों ने भक्ति और सौंदर्य की अभिव्यक्ति में नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत कर कृष्ण काव्य को साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप में विशिष्ट बनाया।

11.8 मुख्य शब्द

- **कृष्ण काव्यधारा**: - श्रीकृष्ण की लीलाओं पर आधारित काव्यधारा।
- **भक्तिभावना:** - ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण।
- **शुद्धाद्वैतवाद:** - ब्रह्म (ईश्वर) और जगत का एकत्व।
- **वात्सल्य:** - माता-पिता का बच्चों के प्रति स्नेह।
- **श्रृंगार रस:** - प्रेम और सौंदर्य का भाव।

- **प्रकृति सौंदर्य:** - प्राकृतिक सुंदरता का चित्रण।
- **ब्रजभाषा:** - ब्रज क्षेत्र की हिंदी की एक शैली।
- **मुक्तक काव्य**: - स्वतंत्र छंदों में रचना।

11.9 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. राधाकृष्ण

उत्तर: 2. सगुण

उत्तर: 3. वात्सल्य, श्रृंगार

उत्तर: 4. अनादि

11.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास - लेखक: डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
2. भक्तिकालीन साहित्य: समाज और संस्कृति - लेखक: डॉ. राकेश पांडेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
3. मध्यकालीन हिंदी साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन - लेखक: डॉ. शंभुनाथ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015
4. कृष्णकाव्य की आधुनिक व्याख्या - लेखक: डॉ. रेखा त्रिवेदी, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 2018
5. हिंदी साहित्य का समाजशास्त्र - लेखक: डॉ. अशोक कुमार पांडेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
6. भक्ति और कृष्ण भक्ति साहित्य - लेखक: डॉ. अरविंद मिश्रा, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2021

11.11 अभ्यास प्रश्न

1. कृष्ण काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या हैं? संक्षेप में समझाएँ।
2. कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति भावना का हिंदी साहित्य में क्या योगदान है?
3. शुद्धाद्वैतवाद का कृष्णकाव्य में क्या महत्व है?
4. कृष्णकाव्य में वात्सल्य और श्रृंगार रस की भूमिका पर प्रकाश डालें।
5. कृष्ण भक्त कवियों द्वारा ब्रजभाषा के विकास में किए गए योगदान पर चर्चा करें।

इकाई - 12

सगुण काव्यधारा के प्रमुख कवि

12.1 प्रस्तावना

12.2 अध्ययन के उद्देश्य

12.3 सगुण काव्यधारा (रामाश्रयी शाखा के कवि)

12.3.1 तुलसीदास

12.3.2 नाभादास

12.3.3 केशवदास

12.3.4 सेनापति

12.3.5 प्राणचंद चौहान

12.3.6 हृदयराम

12.4 सगुण काव्यधारा (कृष्णाश्रयी शाखा के कवि)

12.4.1 सूरदास

12.4.2 परमानंद दास

12.4.3 कुम्भन दास

12.4.4 कृष्णदास

12.4.5 नंददास

12.5 सार - संक्षेप

12.6 मुख्य शब्द

12.7 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

12.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.9 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

सगुण काव्यधारा के प्रमुख कवि भारतीय साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ रहे हैं, जिन्होंने भक्ति और प्रेम के माध्यम से समाज को जागरूक किया। इस इकाई में हम इन कवियों की काव्य-रचनाओं और उनके साहित्यिक योगदान का अध्ययन करेंगे। विशेष रूप से तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, नाभादास जैसे कवियों के जीवन और रचनाओं का विश्लेषण किया जाएगा। इन कवियों ने भक्ति काव्य में एक नई धारा प्रवाहित की, जिसमें भगवान के रूपों, उनके गुणों और भक्तों के प्रति उनकी श्रद्धा को उजागर किया गया। इन कवियों की रचनाएं न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में भी इनकी गहरी छाप है। इस इकाई का उद्देश्य सगुण काव्यधारा के महत्व को समझना और इन कवियों के विचारों और साहित्यिक दृष्टिकोण को जानना है।

12.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- सगुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों, जैसे तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, नाभादास, और अन्य महत्वपूर्ण कवियों का साहित्यिक योगदान।
- इन कवियों द्वारा भक्ति, प्रेम और जीवन के विभिन्न पहलुओं का साहित्यिक प्रस्तुतीकरण और उनके समाज पर प्रभाव।
- काव्यशास्त्र की विभिन्न परंपराएँ, जैसे रामाश्रयी और कृष्णाश्रयी शाखाएँ।
- इन कवियों की प्रमुख काव्य रचनाओं और उनके काव्यशास्त्रीय योगदान।
- सगुण काव्यधारा की साहित्यिक विशेषताओं और इसके प्रभाव का समग्र विश्लेषण।

12.3 सगुण काव्यधारा (रामाश्रयी शाखा के कवि)

12.3.1 तुलसीदास

अपनी रससिक्त वाणी से जनमानस की आलोकित करने वाले महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का जीवन वृत्त आज भी तिमिराच्छन्न है। उनकी रचनाओं में विशेष रूप से रामचरितमानस कवितावली, विनयपत्रिका, वरवै रामायण, और दोहावली में उनके जीवन सम्बन्धी कतिपय संकेत सूत्र अवश्य मिलते हैं। उनके समकालीन और परवर्ती भक्तों, नाभादास, प्रियादास, बेनी माधव दास, रघुवर दास, तुलसी साहेब, हरिराय, कृष्णदास आदि ने भी गोस्वामी जी के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है लेकिन फिर भी उनकी सम्पूर्ण जीवनी निर्विवाद रूप में हमारे समक्ष नहीं आ सकी है। उनके जन्म स्थान, जन्म तिथि बाल्यकाल, माता-पिता, जाति, गुरू, विवाह और परवर्ती जीवन के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के और परस्पर विरोधी मत मिलते है। इनके द्वारा रचित अनेक ग्रन्थ विविध सूत्रों से उपलब्ध हुय है। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में इनके अनेक छोटे-बड़े बारह ग्रन्थों का उल्लेख किया है। दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, और विनयपत्रिका बड़े ग्रन्थ हैं तथा रामलला नहछू, पार्वती-मंगल जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी और कृष्ण गीतावली आदि छोटे ग्रन्थ है। 'शिवसिंह सरोज' में दस और ग्रन्थों के नाम गिनाये गये है राम सतसई, संकट मोचन, हनुमानवाहुक, रामश्लाका, छन्दावली, छप्पय रामायण, कड़ला रामायण, रोला रामायण, झूलना रामायण और कुंडालिया रामायण। अवधी और ब्रज दोनों ही भाषाओं का प्रयोग गोस्वामी जी ने अपनी रचनाओं में किया है किन्तु अधिकांश रचनाओं की भाषा अवधी है जिसमें प्रसंगानुकूल संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

12.3.2 नाभादास

ये तुलसीदास के समकालीन प्रमुख भक्त थे। इनका जन्म स्थान दक्षिणी भारत माना जाता है किन्तु बाल्यकाल में ही ये उत्तर भारत आकर जयपुर में बस गये। 'भक्तमाल' इनका प्रसि) ग्रन्थ है जिसमें इन्होंने पूर्ववर्ती और समकालीन 200 भक्तों का प्रशस्तिमूलक परिचय दिया है।

12.3.3 केशवदास

इनका जन्म 1555 ई0 में और मृत्यु 1617 ई0 के आस-पास हुई थी। ओरछा नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह की सभा में इनका अपने पांडित्य के कारण अत्यधिक सम्मान था। इनके द्वारा लिखे गये सात ग्रन्थ मिलते हैं- कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, वीरसिंह चरित, विज्ञानगीता, रतन बावनी और जहाँगीर जस चन्द्रिका। इनमें से रामचंद्रिका हिन्दी परम्परा के अन्तर्गत एक विशिष्ट कृति है। केशवदास ने सबत् 1658 में रामचंद्रिका की रचना की। कथा का आधार वाल्मीकि रामायण है। कहीं कहीं संस्कृत के अन्य ग्रन्थों की छाप भी स्पष्ट है। ग्रंथ में प्रबन्धात्मक की कमी खटकती है। प्रबन्ध का जो उदाहरण गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया, केशव उससे बहुत दूर हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में 'वाल्मीकि ने रामादि के चरित्र में महामानव की जो झाँकी दिखाई है, केशवदास उसकी छाया को भी अपनी रचना में नहीं ला सके। न उनमें वह भक्ति की ही भावना मिलती है जो सूर तुलसी में मिलती है।

12.3.4 सेनापति

इनका जन्म 1589 ई0 के आस-पास माना जाता है। इनके पिता का नाम गंगाधर तथा गुरू का नाम ही रामणि दीक्षित था। 'कवित रत्नाकर इनका प्रसि) ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की चौथी और पाँचवी तंरगों में रामकथा वर्णित है। इससे ये रामकाव्य परम्परा में स्थान पाने के अधिकारी हो जाते हैं। रामकथा का आधार संभवतः वाल्मीकि रामायण है। इन्होंने गोस्वामी जी के समान राम के लोकोपकारी गुणो का विस्तार से वर्णत किया है।

12.3.5 प्राणचंद चौहान

इन्होंने संवत् 1667 में 'रामायण महानाटक' की रचना की थी जिस पर संस्कृत के हनुमन्नाटक की छाया है। इसमें संवाद शैली में रामकथा लिपिब) है। इसकी भाषा ठेठ अवधी है।

12.3.6 हृदयराम

ये पंजाब के रहने वाले थे। हिन्दी रामकाव्य परम्परा के अन्तर्गत हनुमन्नाटक' द्ध 1623 ई०) इनकी प्रसि) कृति है। संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' का इस पर प्रत्यक्ष प्रभाव है, किन्तु मूलतः यह कृति मौलिक है और कवित्त, सवैया आदि अनेक छन्दों का इसमें प्रयोग हुआ है।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न 1. गोस्वामी तुलसीदास की प्रमुख रचनाएं हैं - _____ , _____ , _____ , _____।

प्रश्न 2. नाभादास का प्रमुख ग्रंथ _____ है।

प्रश्न 3. केशवदास का जन्म _____ ई0 में हुआ था।

प्रश्न 4. हृदयराम की प्रमुख कृति _____ है।

12.4 सगुण काव्यधारा (कृष्णाश्रयी शाखा के कवि)

12.4.1 सूरदास

अष्टछाप के अन्तर्गत भक्त और कवि के रूप में सूरदास का स्थान सर्वोपरि है। उन्हें बल्लभाचार्य भक्ति का समुद्र और गोस्वामी विठ्ठलनाथ 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा करते थे। इसीलिये इनकी रचना सूरसागर कहलायी। किंतु खेद है कि अपने अन्तःकरण से सहस्त्रों हृदयों तक भक्ति की ज्योति फैलाने वाले इस

भक्त कवि का जीवन आज भी तिमिराच्छन्न है। उनका पूर्ण प्रामाणिक और निर्विवाद जीवनवृत्त अब भी प्रकाश में नहीं आ सका। अन्तः साक्ष्य तथा यहिः साक्ष्य के आधार ही उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ सूत्र हाथ लगते हैं। समकालीन तथा परवर्ती रचनाओं में भक्तकाल चौरसी वैष्णवन की वार्ता, आइने अकबरी, आदि ऐसी कृतियाँ हैं जिनमें सूर की जीवनी सम्बन्धी कुछ संकेत मिलते हैं। किन्तु इनमें भी सूर के जन्म संवत् जन्म - स्थान, जाति तथा घटनाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त अन्तर मिलता है।

अनुमानतः सूरदास का जन्म संवत् 1483 ई0 के लगभग और मृत्यु 1585 ई0 के लगभग माना जाता है। उनके जन्म-स्थान के विषय में रूनकता और सीही दो ग्रामों का उल्लेख जनश्रुतियों से मिलता है। पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय उन्हें सारस्वत बाहाण मानते हैं वहीं एक दूसरा पक्ष उन्हे भी ब्राहाण मानता है।

रचनायें

सूरदास के ग्रन्थों में 'सूरसागर', 'सूरसारावली', और 'साहित्य लहरी' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनमें अन्तिम दो सूरदास की रचना है या नहीं, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है।

व्यक्तित्व एवं वैशिष्ट्य

सौन्दर्य तथा प्रेम को परखने की जैसी अन्त्रवृष्टि सूरदास को प्राप्त थी, वैसे हिन्दी के बिरले ही कवियों को प्राप्त है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। अपने सम्पूर्ण जीवन को पुष्टिमार्ग के लिये समर्पित कर देने पर भी उनके काव्य में कहीं साम्प्रदायिकता की गन्ध नहीं है।

सूरदास के समान प्रेम का चित्रकार कोई अन्य कवि नही हुआ। उनके व्यक्तित्व की सबलता तो इसी से स्पष्ट है कि प्रिया-प्रियतम तक ही रति भाव को परिमित न रखकर उन्होंने माता-पुत्र, पिता-पुत्र, सखा सखी के सम्बन्धों में उसका क्षेत्र विस्तार किया । वात्सल्य और श्रृंगार के लिये जिस मधुरावृत्ति की अपेक्षा होती है, वह सूर में सहज ही प्राप्त है।

सूर ने अपने उपास्य की भाषा ब्रज में काव्य रचना की। उन्होने उसे साहित्यिक गरिमा से सम्पन्न किया। सूर अलंकारवादी नहीं थे किन्तु उनके काव्य में अलंकारों का सहज प्रयोग मिलता है। रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, दृष्टान्त, रूपकातिशयोक्ति आदि उनके प्रिय अलंकार है। दृष्टकूट सम्बन्धी पदों में उनकी क्लिष्ट कल्पना और चमत्कार-प्रदर्शन की भावना के दर्शन अवश्य होते है। समग्रतः सूरदास एक रससि) कवि थे, जिन्होंने जीवन को आनन्दमय बनाने के लिये प्रेम और सौन्दर्य का उदात्तीकरण किया है।

12.4.2 परमानंद दास

काव्यकला, भावानुभूति और प्रतिभावी दृष्टि से अष्टछाप के कवियों में सूर के बाद परमानन्ददास का नाम आता है। चौरासी वैष्णव की वार्ता के अनुसार इनका जन्म कन्नौज के एक ब्राह्मण परिवार में संवत् 1550 में हुआ था। ये सूरदास के बाद वात्सल्य रस के सर्वश्रेष्ठ कवि है। परमानन्द सागर, परमानन्द दास जी को पद, दानलीला, उ) वलीला, ध्रुव चरित्र आदि इनकी कई रचनायें है। भावात्मकता, चित्रमपता और सजीयता इनके प्रमुख गुण है। संवत् 1640 के लगभग इनका गोलोकवास हुआ।

12.4.3 कुम्भन दास

इनका जन्म संवत् 1525 के आसपास गोवर्धन के निकट जमुनावती नामक ग्राम में हुआ था। वे बल्लभाचार्य के प्रथम शिष्य थे जिन्हें श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा में लगाया गया उन्होंने अपने को भगवत्सेवा में पूर्णतया समर्पित कर दिया। कहा जाता है कि उनकी भक्ति और त्याग को सुनकर अकबर ने उन्हें फतेहपुर सीकरी बुलाया था। उस समय उन्होंने एक पद सुनाया था, जो बहुत प्रसिद्ध है-

भक्तन को कहा सीकरी सो काम ।
आवत जात पनहियाँ टूटी विसार गयो हरि नाम ॥

इनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। संवत् 1639 इनकी निधन तिथि मानी जाती है।

12.4.4 कृष्णदास

अष्टछाप के अन्तर्गत बल्लभाचार्य के चार शिष्यों में कृष्णदास अन्तिम है। इनका जन्म संवत् 1553 वि0 म गुजरात के चिलोतरा नाम गाँव में हुआ था। कृष्णदास के देहावसान के विषय में भी किम्बदन्तियाँ है। 1578 - पास इनकी मृत्यु मानी जाती है। ई० के आत्त

कृष्णदास काव्य और संगीत के मर्मज्ञ होने के साथ सुकवि और गायक भी थे। इन्होने बाललीला, राधाकृष्ण -प्रेम-प्रसंग, रूप-सौन्दर्य आदि का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। इन्होने किसी ग्रन्थ की रचना नही की। इनके लगभग दो सौ अड़तालीस पद अवश्य मिलते है।

12.4.5 नंददास

अष्टछाप के कवियों में नन्ददास का स्थान काव्य सौष्ठव तथा प्राजंलत की दृष्टि से सूरदास के बाद माना जाता है। इनका जन्म संवत् 1550 में सूकर खेत के निकट रामपुर नामक गाँव में माना जाता है। ये उच्च कोटि के विद्वान् और शास्त्रज्ञ थे। इनके चौदह ग्रन्थ उपलब्ध है, जिनमें रसमंजरी, अनेकार्थ मंजरी, रूपमंजरी, रासपंचाध्यायी और भंवर गीत बहुत ही प्रसि) हैं रसमंजरी नायिका भेद सम्बन्धी गन्थ है। रासपंचाध्यायी में लौकिक और आध्यात्मिक प्रेम का अद्भुत समन्वय मिलता है। नन्ददास के सम्पूर्ण ग्रन्थ परिमार्जित ब्रज भाषा में है। मधुर और परिचित शब्दों का चयन कवि की विशेषता है। इनकी ब्रजभाषा अत्यन्त प्रौढ़ है। इनका स्वर्गवास संवत् 1643 के आस-पास माना जाता है।

12.5 सार - संक्षेप

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है, जिसे विद्वानों ने भक्ति काव्य को अमर काव्य माना है। इस काल के कवियों ने कविता के स्वच्छंद रूप को अपनाया, जो राज्याश्रित न होकर स्वातः सुखाय लिखी गई थी। प्रमुख कवियों जैसे तुलसीदास, सूरदास, कबीर, नानक, और जायसी ने भक्ति और प्रेम के

माध्यम से समाज में नैतिक बल और धार्मिक जागरूकता का प्रसार किया। रामभक्ति और कृष्णभक्ति काव्यधारा में गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास की रचनाएँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। तुलसीदास ने रामकाव्य को नई ऊँचाई दी, वहीं सूरदास ने कृष्णकाव्य में अद्वितीय योगदान दिया। इन कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को आध्यात्मिक और नैतिक मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। भक्तिकाव्य की रचनाएँ बिना किसी बाहरी दबाव के, शुद्ध भक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति हैं, जो आज भी जीवित और प्रभावशाली हैं, और इस प्रकार भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग मानते हैं।

12.6 मुख्य शब्द

- **भक्तिकाव्य** - भगवान के प्रति भक्ति और प्रेम को व्यक्त करने वाला काव्य।
- **स्वर्ण युग** - श्रेष्ठतम साहित्यिक काल।
- **रामभक्ति** - भगवान राम के प्रति भक्ति काव्य।
- **अष्टछाप** - आठ प्रमुख कृष्णकाव्य कवियों का समूह।
- **स्वच्छंद काव्य** - स्वतंत्र रूप से व्यक्त भावनाएँ।
- **रचनाकार** - काव्य रचनाएँ लिखने वाला व्यक्ति।
- **निर्मल हृदय** - पवित्र और निष्कलंक हृदय।
- **नैतिक बल** - अच्छे आचरण और सद्गुणों की भावना।

12.7 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. **रामचरितमानस, कवितावली, विनयपत्रिका, वरवै रामायण**

उत्तर: 2. **भक्तमाल**

उत्तर: 3. **1555**

उत्तर: 4. **हनुमन्नाटक**

12.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. "भक्ति काव्य और संत साहित्य" - डॉ. शंकर शरण, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2015
2. "भक्तिकाव्य: एक अध्ययन" - डॉ. ब्रिजेश कुमार, प्रकाशक: शिक्षा निकेतन प्रकाशन, 2018
3. "तुलसीदास और उनका काव्य" - डॉ. महेन्द्र सिंहप्, विश्व पुस्तक मेला, 2019
4. "कृष्णकाव्य और अष्टछाप" - डॉ. प्रमिला सिंह, साहित्य वर्धन प्रकाशन, 2020
5. "रामकाव्य परिप्रेक्ष्य" - डॉ. राजीव रंजन, रचनाकार प्रकाशन, 2021

12.9 अभ्यास प्रश्न

1. भक्तिकाव्य के प्रमुख कवि कौन थे और उनकी रचनाओं में समाज के प्रति उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट करें।
2. संत काव्य में कबीर और सूरदास के योगदान का तुलनात्मक अध्ययन करें।
3. गोस्वामी तुलसीदास की रामभक्ति काव्यधारा पर विचार करें और उनके काव्य का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व बताएं।
4. कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं पर चर्चा करें, विशेष रूप से सूरदास और उनके काव्य के विशेष पहलुओं को उजागर करें।
5. भक्तिकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ और कवियों के माध्यम से समाज में धर्म, नैतिकता और मानवता के संदेश को समझाएं।

ब्लॉक - IV

इकाई -13

हिंदी साहित्य का रीतिकाल

13.1 प्रस्तावना
13.2 अध्ययन के उद्देश्य
13.3 रीतिकाल का अर्थ एवं स्वरुप
13.4 नामकरण एवं काल सीमा
13.5 रीतिकाल की परिस्थितियाँ
13.6 रीतिकाल की सामान्य प्रवृत्तियां
13.7 सार - संक्षेप
13.8 मुख्य शब्द
13.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
13.11 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने भक्तिकाल के बारे में पढ़ा। इस इकाई में रीतिकाल का अध्ययन करेंगे। हिंदी साहित्य के स्वर्णयुग 'भक्तिकाल' में जो भक्ति की धारा बही, यह काल उससे बिल्कुल अलग विशेषताओं को समेटे हुए था। रीतिकाल को उत्तर मध्यकाल के नाम से भी जाना जाता है। रीतिकाल हिंदी साहित्य के बाद का काल है, इस काल में साहित्य को एक नई दिशा मिली। उत्तर मध्यकाल कहलाने वाली इस काव्यधारा की अपनी कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियां रहीं, जिस कारण इसे 'रीतिकाल' की संज्ञा भी दी जाती है। अतः अब हम रीतिकालीन साहित्य को प्रभावित करने या उसकी प्रेरणा बनने वाली ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक,

सांस्कृतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का विश्लेषण करेंगे। साथ ही रीतिकाल का अर्थ, स्वरूप, नामकरण एवं काल सीमा की जानकारी प्राप्त करेंगे।

13.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- रीतिकाल का अभिप्राय और स्वरूप।
- हिंदी साहित्य के रीतिकाल का नामकरण और इस पर होने वाली बहस।
- रीतिकालीन परिस्थितियाँ और उनका साहित्य पर प्रभाव।
- रीतिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और उनका विश्लेषण।

13.3 रीतिकाल: अर्थ एवं स्वरूप

'रीति' का सामान्य अर्थ 'विधि', 'प्रणाली' या 'परिपाटी' होता है, किंतु साहित्यशास्त्र में इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता रहा है। संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य वामन ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' की घोषणा करते हुए इसे एक विशेष रचनापद्धति से संबद्ध किया तथा इसका लक्ष्य काव्य में सौंदर्य की उत्पत्ति करना माना। 'रीति' को काव्य की आत्मा स्वीकार कर लेने की स्थिति में उसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है, उसकी परिधि में भावपक्ष एवं कलापक्ष संबंधी सभी सौंदर्योत्पादक साधनों का समावेश हो जाता है, किंतु 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' के रचयिता ने इसे वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली जैसी तीन पद्धतियों तक ही सीमित कर दिया। आचार्य शुक्ल ने इसे व्यापक अर्थ में स्वीकार किया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है- "यहां साहित्य को गति देने में अलंकार-शास्त्र का ही जोर रहा है जिसे उस काल में 'रीति', 'कवित्त-रीति', 'सुकविरीति' कहने लगे थे, संभवतः इन शब्दों से प्रेरणा पाकर शुक्ल जी ने इस श्रेणी की रचनाओं को 'रीतिकाव्य' कहा है।" डॉ. नरेंद्र एवं श्री विश्वनाथ प्रसाद ने भी इस प्रकार की

व्याख्या करते हुए 'रीति' शब्द को 'काव्य-रीति' का संक्षिप्त रूप बताया है। वस्तुतः इन मध्यकालीन कवियों का मुख्य उद्देश्य, जैसा कि आचार्य शुक्ल ने स्वीकार किया है, अपने आश्रयदाताओं के हृदय में काम की पिचकारी छोड़ना था, उनकी रसिकता को उत्तेजित करते हुए उन्हें प्रेम की विभिन्न एवं शिष्ट सुसंस्कृत पद्धतियों से परिचित कराना था, अन्यथा वे केवल श्रृंगार-रस और नायिका-भेद को ही नहीं अपनाते। हिंदी साहित्य के इतिहास में संवत् 1700 से 1900 तक का समय रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। यह भक्तिकाल के बाद का तथा आधुनिक काल से पहले का कालखंड है। लगभग 200 वर्षों के इस काल में भारत में मुगलों का राज्य था। मुगल बादशाहों के उत्कर्ष को उनके वैभव विलास तथा विजय-वृत्तांतों से भी देखा जा सकता है। युद्ध से अवकाश मिलते ही ये समर्थ-शासक विलासिता की नदी में तैरने लगते थे। शाहजहां के समय से ही रीतिकाल का प्रारंभ भी देखा जाता है। शाहजहां के इसी समय से मुगल शासकों का उत्कर्ष-बिंदु से धीरे-धीरे उतरना तथा हिंदी साहित्य में काव्य का भक्ति-वैभव के चरण से या स्वर्णयुग से नीचे उतरते हुए क्षयग्रस्त होना भी सहज ही देखा जा सकता है। अतः मुगल साम्राज्य और हिंदी काव्य के हासोन्मुख होने का युग था रीतिकाल।

मध्यकालीन समाज के वैभव ने भी इस काल के साहित्य को दिशा दी। इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा है- "श्रृंगार-वर्णन को बहुत से कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंचा दिया। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाताओं की रुचि थी, जिनके लिए वीरता और कर्मण्यता का जीवन बहुत कम रह गया था। आश्रयदाताओं का मनोविनोद तथा कवियों की अर्थप्राप्ति एक दूसरे के पूरक बनते चले गए। काव्य रचना अब राजाओं की रुचि एवं इच्छा के अनुरूप ही होने लगी। कवियों ने आश्रयदाताओं को तृप्त एवं प्रसन्न करने के लिए श्रृंगारी रचनाओं का सृजन जी भर के किया। राजाओं की वासना-तृप्ति ने कविता का उद्देश्य तथा स्वरूप बदल डाला। कवियों से काव्य शिक्षा ग्रहण करना

भी राजाओं आश्रयदाताओं की रुचि में शामिल हो गया। परिणामतः संस्कृत लक्षणों को ध्यान में रखकर कवियों ने आचार्यत्व का मोह पाला और वे काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण भी करने लगे। इसी युग में कुछ रीतिइतर काव्य परंपराएं भी मिलीं जो कि भक्तिकालीन परंपराओं का विस्तार भी कही जा सकती हैं। ऐसी काव्य धाराओं में भक्तिपरक, नीतिपरक, वीरकाव्य, प्रकृति, राजप्रशस्ति, वैधक एवं चिकित्सा संबंधी तथा ज्योतिष संबंधी काव्य-सृजन भी चलता रहा, परंतु यह गौण रहा। मुख्य रूप से रीतिकाल में 'श्रृंगार' की प्रवृत्ति ही मुखर रही। रीतिकाल परिवेश तथा युगीन परिस्थितियों की आधारशिला पर स्थापित होने के कारण ही इस साहित्य का यह स्वरूप निर्मित हुआ। मुगल शासकों के प्रभावस्वरूप ही फारसी भाषा तथा साहित्य का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में देखा जा सकता है। इसी प्रकार संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा के आचार्य भरत से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के सभी आचार्यों तक उनके रस अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति एवं औचित्य आदि संप्रदायों के प्रभाव को भी रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में देखा जा सकता है। अलंकार निरूपण रस विवेचन, नायक-नायिका भेद तथा नखशिख वर्णन आदि का जो विशाल भंडार इस युग के साहित्य में उपलब्ध है, वह संस्कृत की परंपरा का पोषक ही कहा जा सकता है। इसकी प्रेरणा भी वही है। इस काल के नामकरण को लेकर भी पर्याप्त विवाद है, अतः उस पर दृष्टि डालना भी आवश्यक है।

13.4 नामकरण एवं काल सीमा

रीतिकाल के नामकरण को लेकर भी पर्याप्त विवाद रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'रीतिकाल' नाम दिया। उनके अनुसार 'रीति' शब्द एक विशेष प्रकार की पदरचना या परिपाटी का सूचक है। रीति वास्तव में प्रणाली या प्रस्तुति का द्योतक है। इन कवियों ने एक विशिष्ट प्रणाली को दृष्टि में रखते हुए काव्य रचना की। यह प्रणाली ऐसी थी जिसमें सर्वप्रथम कवि आचार्य धर्म का निर्वाह

करते हुए काव्य रचना की रीति या लक्षण प्रस्तुत करते थे तद्नुरूप रचना करते थे। ये उदाहरण उनके अपने रचे हुए भी होते थे और कभी दूसरे कवियों के भी दे दिए जाते थे। अतः लक्षण बताकर उदाहरण देने की प्रवृत्ति इसी युग में एक परंपरा सी बन गई। ये उदाहरण अधिकांशतः श्रृंगारी होते थे। अतः इन लक्षणों की एक रीति सी बन गई थी। यही कारण है कि कवि शिक्षा देने या लाक्षणिक ग्रंथ लिखने के कारण इन कवियों को आचार्य या आचार्य कवि भी कहा जाता है। इसी कारण आचार्य शुक्ल ने इसे 'रीतिकाल' नाम दिया। इसी प्रकार अन्य बहुत से कवियों ने भी 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्य-रचना के अर्थ में किया है। अतः यह नामकरण अत्यंत सटीक, सारगर्भित एवं अर्थवान बन गया।

मिश्रबंधुओं ने अपने इतिहास ग्रंथ 'मिश्रबंधु-विनोद' में इस काल को 'अलंकृत काल' नाम दिया है। किंतु इससे यह प्रतीत होता है कि इस काल में केवल अलंकार आदि को ही प्रमुख प्रवृत्ति मान लिया गया है। 'अलंकृत काल' मान लेने से जो अन्य श्रृंगार, नीति, रीति, वीर और प्रशस्ति आदि से संबद्ध काव्य की अवहेलना हो जाती है। श्रृंगार की प्रवृत्ति इस युग में प्रमुख है और श्रृंगार संबंधी काव्य परिमाण में भी पर्याप्त है परंतु यह भी विस्मृत नहीं किया जा सकता कि इस युग के बहुत से कवियों ने लक्षण-ग्रंथ लिखकर भी श्रृंगार को कोई स्थान नहीं दिया। नीति, भक्ति, प्रवृत्ति के ऐसे कई ग्रंथ भी हैं जहां श्रृंगार उपलब्ध नहीं है। साथ ही श्रृंगार वर्णन भी राजा या आश्रयदाताओं की रुचि को केंद्र में रखकर ही किया गया, स्वेच्छा से नहीं। अतः श्रृंगार काल नाम भी पूरी तरह से उपयुक्त एवं सटीक नहीं लगता। इसमें भी अव्याप्ति दोष है। यही बात 'कला काल' के संदर्भ में भी कही जा सकती है। यह नाग डॉ. रमाशंकर शुक्ल रसाल ने दिया। यह नाम संभवतः काव्य-शास्त्र के निर्माण और कलापक्ष के परिष्कार और उत्कर्ष की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति का द्योतक है। किंतु इस नाम से भी सभी प्रवृत्तियों का परिचय नहीं मिलता।

अतः रीतिकाल नाम ही सर्वाधिक वैज्ञानिक और संगत है। इस युग में रीति संबंधी ग्रंथ तो अधिक लिखे ही गए साथ ही इस युग के कवियों की प्रवृत्ति भी ऐसे ही ग्रंथ रचने की रही। फिर श्रृंगार रस के उदाहरण भी लक्षण के रूप में ही प्रस्तुत किए गए। अतः ये भी रीतिबद्ध काव्य से अधिक दूर नहीं रहे। रीतिनिरूपण की यह प्रवृत्ति भक्तिकाल में ही जन्म ले रही थी। यद्यपि यह नाम भी पूर्णतः उचित नहीं है। इसका कारण है कि रीतिकाल के कुछ कवि इस 'रीति' से अलग रहे। आलम, घनानंद, बोधा, ठाकुर जैसे कवियों पर न तो काव्यशास्त्र का प्रभाव रहा और न ही इन्होंने रीति निरूपक काव्य ग्रंथों की रचना की। इसी प्रकार सूदन, जोधराज जैसे वीर रस के कवि भी इस नाम के अंतर्गत नहीं आ पाते। किंतु इन कवियों को रीतिमुक्त अथवा रीतिइतर श्रेणी में रखा जा सकता है। तथापि 'रीतिकाल' नाम 'अलंकृत काल', 'कला काल' तथा 'श्रृंगार काल' कहने से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। स्पष्ट है कि विषय चयन एवं विषय विस्तार के आधार पर रीतिकाल कहना ही उचित है। साथ ही अधिकांश कवियों द्वारा श्रृंगार को न्यूनाधिक रूप से ग्रहण करना भी एक विशिष्ट पद्धति के अंतर्गत आता है। अनेक आचार्यों के रीति निरूपण संबंधी ग्रंथ भी इसके प्रमाण हैं। रीतिमुक्त कवियों पर भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से 'रीति' के प्रभाव को देखा जा सकता है। किसी भी काल का आदर्श सीमा निर्धारण संभव नहीं है। कारण यह है कि हिंदी स काव्यधारा या प्रवृत्ति विशेष को किसी विशेष निश्चित तिथि में नहीं बांध सकते। आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल की समय सीमा 1700 से 1900 विक्रमी संवत् मानी है। बाद के आचार्यों ने भी इसे मान्यता दी है। रीतिकाल के प्रथम कवि को लेकर भी विवाद रहा। है। कुछ विद्वान केशव को मान्यता देते हैं, जबकि कुछ ने चिंतामणि को माना है। आचार्य केशव की रचना 'रसिकप्रिया' (सन् 1591) में ही रीतिकाव्य सृजन की परंपरा डल चुकी थी परंतु अविच्छिन्न रूप से रीतिनिरूपण विषयक ग्रंथों की रचना चिंतामणि के रचनाकाल से ही प्रारंभ हुई। अतः केशव से रीतिकाव्य परंपरा के स्रोत खोजे जा सकते हैं परंतु समय सीमा

के आधार पर उन्हें भक्तिकाल के उत्कर्ष का कवि आचार्य ही माना जा सकता है।

स्वप्रगति परीक्षण

नीचे दिए गए प्रत्येक कथन को ध्यानपूर्वक पढ़ें और सत्य अथवा असत्य का चयन करें -

प्रश्न 1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'रीतिकाल' नाम दिया था क्योंकि इस युग में केवल अलंकार की प्रवृत्ति प्रमुख थी। (सत्य/असत्य)

प्रश्न 2. 'अलंकृत काल' नाम देने से केवल अलंकार संबंधी काव्य की महत्ता पर जोर दिया गया था। (सत्य/असत्य)

प्रश्न 3. रीतिकाल की समय सीमा आचार्य शुक्ल के अनुसार 1700 से 1900 विक्रमी संवत् मानी जाती है। (सत्य/असत्य)

प्रश्न 4. 'रीतिकाल' नाम से कवियों की विभिन्न प्रवृत्तियों का समावेश होता है, जिनमें श्रृंगार, नीति, भक्ति, और वीर रस भी शामिल हैं। (सत्य/असत्य)

13.5 रीतिकाल की परिस्थितियाँ

कोई भी साहित्य समाज की परिस्थितियों से निर्मित होता है। कवि या साहित्यकार को प्रेरक बिंदु प्रदान करने और उनकी अभिव्यक्ति के लिए परिवेश प्रदान करने का श्रेय परिस्थितियों को ही जाता है। रीतिकालीन समाज के परिवेश ने भी साहित्य को दिशा प्रदान की। युगीन घटनाओं ने साहित्य को आकार दिया। आश्रयदाता राजाओं की रुचियां साहित्यकार को एक खास तरह की मानसिकता दे रही थीं। कवि ने सामाजिक अनुभूति को ही साहित्यिक अभिव्यक्ति बनाकर प्रस्तुत करना प्रारंभ किया। जनसामान्य की स्थितियों को तथा काव्य एवं कला के स्वरूप को राजाओं की चितवृत्ति के अनुसार ढलना पड़ा। युग की राजनीतिक,

सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियां इन्हीं चितवृत्तियों तथा मनोवृत्तियों से प्रभावित हुईं और फिर साहित्य तथा साहित्यकार को प्रेरित-प्रभावित किया। अतः रीतिकालीन साहित्य या साहित्यकारों पर लगने वाले आक्षेपों का उत्तर युगीन परिस्थितियां ही बनती हैं। यही साहित्य की दिशा निर्धारित कर कवि या साहित्यकार का मार्ग प्रशस्त करती हैं। यहां हम इन परिस्थितियों का विश्लेषण करेंगे-

1. ऐतिहासिक एवं राजनैतिक परिस्थितियां यह युग अशक्ति और अव्यवस्था का युग था। मुगल शासन की शक्तिहीनता, बाहरी आक्रमणों, प्रादेशिक शासकों के पारस्परिक युद्धों, मराठों के उदय एवं अंग्रेजों के आगमन के कारण इस युग में हिंदी भाषा-भाषी प्रदेशों में अशक्ति और अव्यवस्था का वातावरण बना रहा। यह काल आक्षेपों और आरोपों का युग रहा।

भक्तिकालीन साहित्य के उत्कर्ष के समय ही रीतिकाल की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। यह काल सुख-समृद्धि का काल था। यह अकबर का काल था, तत्पश्चात जहांगीर का शासनकाल आया। इस समय तक राजनीतिक विघटन प्रारंभ हुआ। राजनीतिक षड्यंत्रों, भयावह युद्धों एवं गृहकलह के कारण घटित होने वाली रक्तरंजित घटनाओं ने यहां के राजनीतिक वातावरण में अस्थिरता उत्पन्न कर दी। अतः राजनीतिक दृष्टि से यह काल मुगलों के शासन के वैभव और चरमोत्कर्ष तथा फिर उत्तरोत्तर हास, पतन और निराशा का युग कहा जा सकता है।

शाहजहां के शासनकाल में वास्तुकला अपने चरम पर थी, किंतु शासन का पतन प्रारंभ हो गया। तत्पश्चात औरंगजेब के शासनकाल में धर्मांधता एवं कट्टरता के साथ-साथ राज्य विस्तार की लिप्सा ने पहले तो राजनीतिक दीवारों में दरार डाली और फिर यही खाई धीरे-धीरे बढ़ती चली गई। इसी अत्याचार के विद्रोह स्वरूप हिंदू-मुसलिम नरेश सजग हुए। अस्तित्व रक्षा के लिए विद्रोह करती दक्षिण की मराठा-शक्ति तथा पंजाब की सिख शक्ति का उदय हुआ। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का पतन प्रारंभ हुआ। कालांतर में दैवी प्रकोप या संघर्ष

के कारण कोई भी शासक दीर्घकाल तक सत्तासीन नहीं रह सका। परिणामतः विलास भोग बढ़ता गया तथा अव्यवस्था फैल गई। केवल मुगल राजनीति ही नहीं, मराठों और सिक्खों की राजनीति के उत्थान-पतन भी इस युग को झेलने पड़े। भारतीयों के बंटे होने के कारण रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में आते-आते अंग्रेज़ों की सत्ता का निरंतर विकास होता गया। परिणामतः मराठों और सिक्खों की पराजय के कारण लोगों में जीवन के प्रति अनास्था जगी तो विलास के प्रति आस्था प्रबल होने लगी। राजाओं के राजदरबार और नवाबों के महल विलासिता के अखाड़े बनकर रह गए। अस्थिरता से उदासीनता बढ़ी और असुरक्षा की भावना ने विलासिता को विस्तार दिया। मुगल दरबारों की शान तथा विलासिता की भावना ने युगीन वातावरण को इस रूप में उद्दीप्त कर दिया कि जन-जन की रुचि तथा चित्तवृत्ति श्रृंगारी होती चली गई। साहित्य तथा साहित्यकार इसी वातावरण तथा राजनीति का लाभ उठाने के लिए दरबारी बनने लगे। सन् 1857 की देशव्यापी राज्यक्रांति ने अंतिम निष्फल प्रयास कर विलासी मुगलों को प्रतिष्ठा दिलानी चाही, परंतु व्यर्थ रहा। स्पष्ट है कि ऐसी राजनीतिक चालों और गिरते हुए मूल्यों के बीच रचा गया रीतिकालीन साहित्य युग के राजाओं, नवाबों और आश्रयदाताओं के दरबार की नुमाइश बनकर रह गया।

2. सामाजिक परिस्थितियां - सामाजिक दृष्टि से यह युग पतन का युग था। इस युग में सामंतवादी प्रथा थी, अतः सामंतवादी समाज के दोष भी विद्यमान थे। चाटुकारिता का बोलबाला था। रीतिकाल में जन-सामान्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि वर्गों में विभक्त थे। इन वर्गों में खान-पान, विवाह आदि अपनी ही जाति के लोगों तक सीमित हो गया था। समाज अनास्था, अराजकता और कुंठाओं से ग्रस्त होता जा रहा था। ब्राहाणों का अन्य जातियों पर प्रभुत्व था। क्षत्रिय वर्ग उच्च पदों पर आसीन थे। क्षत्रिय वर्ग मदिरापान में लगा था। वैश्यों और शूद्रों की स्थिति अच्छी न थी। शूद्र बहुविवाह, सती प्रथा, लोक मर्यादा का भय आदि सामाजिक दोष पनप रहे थे। बलि प्रथा, परदा प्रथा और अंधविश्वास

भी समाज में फैल रहे थे। श्रृंगार प्रधान काव्य, नायक-नायिका भेद, नखशिख वर्णन एवं विविध क्रीड़ाओं का रसमयी शैली में विवेचन इस काल में प्रमुखतः किया गया है। इस युग का साहित्य किन परिस्थितियों से चालित एवं प्रेरित होता रहा, इसकी समीक्षा करना ही लक्ष्य है। वास्तव में परिस्थितियां साहित्य सृजन की प्रभावी प्रेरणा तो बनती ही हैं साहित्यकार एवं कलाप्रेमियों की दिशा-निर्देशिका का कार्य भी करती हैं। इस प्रकार साहित्यकार और परिस्थितियां एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। संपूर्ण विश्व के एवं सभी भाषाओं के साहित्य पर परिस्थितियों के प्रभाव को देखा-समझा जा सकता है।

रीतिकालीन साहित्य श्रृंगार से ओतप्रोत था। किंतु इसका कारण क्या था यह विचारणीय विषय है। कवियों को घोर श्रृंगारी साहित्य लिखने की प्रेरणा कहां से मिली। इन प्रश्नों का उत्तर भी तात्कालिक परिवेश में ही छिपा है।

साथ ही यह भी पूर्णतः सत्य नहीं है कि इस युग में केवल श्रृंगारी काव्य का ही सृजन हुआ हो। श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य कई प्रवृत्तियां भी इस युग के काव्य में देखने को मिलती हैं।

3 धार्मिक परिस्थितियां - रीतिकाल न केवल राजनीतिक एवं सामाजिक पतन का युग था, वरन् धार्मिक दृष्टि से भी सभी मापदंड समाप्त हो रहे थे। धार्मिक स्थितियां भी आदर्श विमुख थीं। शाहजहां के काल की धार्मिक सहिष्णुता को औरंगजेब ने समाप्त कर दिया, धीरे-धीरे यह धार्मिक कट्टरता बनकर सामने आई। धर्म की उदात्तता नष्ट हो गई। विलास वासनाओं और ऐहिक संपूर्तियों ने धर्म को आच्छादित कर दिया। बाह्याचारों, अंधविश्वासों और धार्मिक अनाचारों ने जनता को ठगना प्रारंभ कर दिया। अधकचरे मौलवियों, ढोंगी साधु-संतों ने धार्मिक असंगतियों तथा दुराग्रहों से समाज को बंधक बना लिया। साधारण जनता लिप्सा-ग्रस्त होने लगी। भक्तिभाव मांसल तथा ऐंद्रिक बनते गए। राधा और कृष्ण के नाम पर कुत्सित भावनाओं का प्रदर्शन हुआ। धार्मिक आड़ में अनाचार फले-फूले।

हिंदू और मुसलिम एक्य की जो लहर भक्तिकाल में चली थी, वह अब समाप्त होने लगी। अब इन दोनों में एक विभाजन रेखा खिंच गई। हिंदू धर्म अनेक साधना पद्धतियों में लिप्त हो गया। वैष्णव, शाक्त, शैव, जैन, सिद्ध आदि अनेक पंथ चले और हिंदुओं की आस्था के केंद्र बन गए। मंदिर मसजिद राजमहलों से नियंत्रित थे। राजसत्ता धर्म का प्रयोग अपनी स्वार्थसिद्धि हेतु कर रही थी। यही कारण है कि बाल कृष्ण की बाल लीलाएं, युवा कृष्ण की काम क्रीड़ाएं बनकर रह गई। मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी इस युग में आकर रसिक संप्रदाय के रसिक बन गए। सखी संप्रदाय ने राम-सीता की श्रृंगारी लीलाओं का वर्णन किया है। यद्यपि निर्गुण भक्ति संप्रदाय भी चल रहे थे, किंतु इनकी भक्ति भी युगीन परिवेश से संपृक्त थी।

ऐसे धार्मिक पतन के युग में कला और साहित्य भी दरबारी बन गए। श्रृंगार अपनी शुचिता से विलासिता की ओर जाने लगा। वास्तव में रीतिकालीन साहित्य समस्त समाज का दर्पण न होकर एक सामंती समाज का प्रतिबिंब है। हिंदी साहित्य व जन सामान्य से तो इस युग का साहित्य विमुख ही रहा है।

13.6 रीतिकाल की सामान्य प्रवृत्तियां

रीतिकाल की परिस्थितियों का परिचय हम पूर्व में प्राप्त कर चुके हैं। रीतिकाल में संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परिपाटी के लिए 'रीति' शब्द का प्रचलन प्रारंभ हुआ। इस काल में जिन विषयों से संबद्ध कविता लिखी गई वे हैं श्रृंगार, राजप्रशस्ति, भक्ति, नीति, प्रकृति तथा अन्य विषय। साथ ही रीतिकाल में दो प्रकार के कवि थे एक वे जो राजदरवार में रहकर काव्य रचना करते थे, तथा दूसरे वे जो बाहर काव्य रचना करते थे। इनकी अधिकांश रचनाओं में दरबारी संस्कृति और संस्कृत के लक्षण ग्रंथों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। रीतिकाल की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. रीति निरूपण - इस काल के कवियों की यह प्रधान विशेषता है। इन कवियों ने तीन प्रकार की रचनाएं कीं। प्रथम वे कवि थे जिन्होंने काव्यांगों का परिचय दिया तथा ऐसे ग्रंथों में लक्षण के साथ उदाहरण अन्य कवियों से दिए गए। यथा जसवंत सिंह का 'भाषाभूषण', रसिक सुमति का 'अलंकार चंद्रोदय', दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' आदि। द्वितीय अंतप्रवृत्ति में रीति कर्म और कवि कर्म का समान महत्व रहा है। इसमें ग्रंथकार लक्षण देकर और उसी के अनुरूप कवित्त्वपूर्ण रचना करता है। चिंतामणि, मतिराम, भूषण, देव, कुलपति और श्रीपति के ग्रंथ इसी प्रकार के हैं। तृतीय अंतः प्रवृत्ति के अंतर्गत ग्रंथकारों ने सभी छंदों की रचना यद्यपि काव्यशास्त्रीय नियमों में बंधकर की है, किंतु लक्षण के फेर में वे नहीं पड़े। बिहारी, भूपति, चंदर आदि द्वारा रचित ग्रंथ इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं। विवेच्य शैली के आधार पर रीतिनिरूपण की प्रवृत्ति की तीन शैलियां हैं- प्रथम में लक्षणों, उदाहरणों की व्याख्या देकर विवेच्य विषयों को समझाने का प्रयत्न किया गया है। दूसरी शैली संक्षेप शैली है। जिसमें लक्षण व उदाहरण पृथक-पृथक दिए गए हैं। तीसरी शैली में लक्षण और उदाहरण देकर विषय निरूपण किया गया है। अतः रीतिनिरूपण रीतिकाल में पर्याप्त मात्रा में है।

2. श्रृंगारिकता - यह रीतिकालीन कवियों की सर्वप्रमुख प्रवृत्ति है। इन कवियों ने आलंबन विभाव के अंतर्गत नायक-नायिका के संयोग-वियोग वर्णन, नखशिख वर्णन, काम दशाओं और काम चेष्टाओं का वर्णन किया है। यह इस काल के सभी ग्रंथों में ही नहीं देखा जा सकता, प्रत्युत सतसई ग्रंथों तथा स्फुट श्रृंगारी छंदों में भी देखने को मिलता है। अतः नायिका स्वरूप वर्णन श्रृंगारिकता की पहली और सर्वव्यापक अन्तः प्रवृत्ति कही जा सकती है प्रायः कवि परंपरागत ढंग से नायिकाओं के विभिन्न शरीरावयवों का स्थूल वर्णन करते हुए दृष्टिगत होते हैं। कुछ कवियों ने तो नखशिख संबंधी स्वतंत्र ग्रंथों की रचना की है। तोश, मंडन, कुलपति, रसानंद इसी अंतःप्रवृत्ति के प्रमाण हैं। जैसा कि आचार्य शुक्ल

का कथन है- "इस रस का इतना अधिक विस्तार साहित्य में हुआ कि इसके एक-एक अंग को लेकर स्वतंत्र ग्रंथ रचे गए।" एक उदाहरण प्रस्तुत है-

कुंदन को रंग फीको लगे, झलके ऐसी अंगन चारू गुराई।
आंखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई ।।

श्रृंगार के अंतर्गत इन्होंने मुख्यतः संयोग पक्ष का एवं नायिका के सौंदर्य का निरूपण किया। आलंबन की नधुर छवि एवं उसकी सूक्ष्म चेष्टाओं के अंकन के लिए उन्होंने नखशिख वर्णन की परंपरागत शैली में थोड़ा संशोधन करके नई पद्धति का विकास किया। दूसरी ओर शऋतु और बारहमासा के वर्णन की प्रवृत्ति भी इस काल के कवियों में देखने को मिलती है। अनुभावों का वर्णन इन कवियों की प्रमुख विशेषता रही है किंतु किसी ग्रंथ में इन्हें एकांत रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया। इसी प्रकार वियोग श्रृंगार के वर्णन में दशकामदशाओं तथा विप्रलम्भ श्रृंगार के भेदों का वर्णन भी प्रायः कवियों ने शास्त्रीय परिपाटी के अनुसार किया है, किंतु वहां पर भी एतत्संबंधी किसी अंतःप्रवृत्ति के होने की बात नहीं की जा सकती।

3. राजप्रशस्ति - यह भी रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति है। इसका दर्शन सामान्यतः द्वंद्व और अलंकार के निरूपण संबंधी ग्रंथों तथा आमुखों के रूप में होता है। इस प्रवृत्ति के भीतर किसी अंतःप्रवृत्ति को तो स्पष्टतः नहीं देखा जा सकता पर आश्रयदाताओं और उनके पूर्वजों के वैभव, उनके शौर्य और पराक्रम तथा उनकी दानशीलता का वर्णन इन कवियों का मुख्य वर्णन विषय रहा है, पर उसमें आश्रयदाताओं के शत्रुओं की कायरता तथा आश्रयदाताओं के आतंक के वर्णन की प्रवृत्ति के सिवाय कोई वैशिष्ट्य दृष्टिगत नहीं होता।

राजप्रशस्ति के अंतर्गत उद्देश्यों की पूर्ति कवियों का लक्ष्य रहा (1) अपने ग्रंथों का नामकरण आश्रयदाता के आधार पर करना। (2) आश्रयदाता के जीवन चरित्र को लेकर खंडकाव्य की रचना करना। यद्यपि इस प्रकार के ग्रंथ प्रबंधत्व की दृष्टि से सफल नहीं हैं, किंतु इस प्रवृत्ति का एक लाभ अवश्य हुआ कि ऐतिहासिक

या अर्द्धऐतिहासिक इतिवृत्त को लेकर वीररसात्मक काव्यों की रचना हुई। कवियों की वाणी जो श्रृंगार रस की मंद-मंद स्वर लहरियों को गुंजाने की अभ्यस्त थी. उसने रौद्र और वीर तुमुल घोष करने का भी साहस दिखाया।

4. भक्ति भावना - इन सभी कवियों ने विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति अपनी आस्था या भक्ति भावना का प्रदर्शन उसी प्रकार से किया है, जिस प्रकार से उस युग में एक सामान्य गृहस्थ अपने परिवार और अपने कल्याण के लिए व्यक्त करता था। न तो इनमें किसी विशिष्ट देवी या देवता के प्रति भक्ति भाव का आग्रह है और न किसी विशिष्ट भक्ति संप्रदाय के सिद्धांतों के अनुरूप अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति ही है; यथा-

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय
जा तन की झांई परत, श्याम हरित दुति होय।

कतिपय रचनाओं में कवियों ने दार्शनिक विचार भी व्यक्त किए हैं। किंतु उनमें कोई विशिष्ट सैद्धांतिक बात नहीं मिलती जिसे किसी प्रवृत्ति की संज्ञा दी जा सके। उस काल के सामान्य व्यक्ति को अद्वैत दर्शन अथवा उनकी व्याख्याओं का जो अधकचरा ज्ञान प्राप्त था, वही प्रायः दृष्टिगत होता है। कवि में भावुकता। का गुण होना सहज स्वाभाविक है. अतः जब ये भक्ति संबंधी छंदों की रचना में प्रवृत्त होते हैं तो वहां कहीं-कहीं सच्चे भक्त का भ्रम उत्पन्न कर देते हैं। वैराग्य की प्रवृत्ति को अतिश्रृंगारिकता की प्रतिक्रिया के रूप में ग्रहण करना उचित होगा। डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी के अनुसार वृद्धावस्था में अशक्त होकर केशव, देव, पद्माकर आदि सभी प्रमुख कवि वैराग्य से ग्रसित दिखाई पड़ते हैं जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ठीक है।

5. नीति - भक्ति के समान काव्यशास्त्रीय नियमों में बंधी नीतिपरक रचनाएं इस काल के रीति ग्रंथों तथा रीति की परिपाटी में बद्ध ग्रंथों में मिलती है। इनमें प्रथम वे रचनाएं हैं जिनमें कवि अपने जीवन के अनुभवों अथवा महापुरुषों की वाणी के आधार पर व्यक्ति को कर्तव्य अकर्तव्य का बोध कराता है अथवा

अपने आपको संबोधित करता है। इनमें सतसई ग्रंथों तथा अलंकार-निरूपण संबंधी ग्रंथों के कतिपय छंदों में भी इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। दूसरे वे ग्रंथ हैं जिनमें कवि 'अन्योक्ति' की सहायता से किसी व्यक्ति को सावधान करता है अथवा कर्तव्य बोध कराता है। ये रचनाएं अधिकांशतः उस युग के दरबारी वातावरण में लिखी गई हैं जहां कोई व्यक्ति शासक के कोप के भय से स्पष्टतः कुछ नहीं चाहता। यथा-

कनक-कनक तैं सौ गुनी मादकता अधिकाइ
या खाए बौराइ जग वा पाए बौराइ।

6. प्रकृति चित्रण - रीतिकाल दरबारी काव्य था। रीतिकालीन कवियों के पास प्रकृति में विचरण करने का अवकाश नहीं था। अतः प्रकृति का चित्रण नायक-नायिका की मनोदशा के अनुकूल ही किया गया है। संयोगावस्था में यदि प्रकृति का मनोमुग्धकारी एवं प्रफुल्लित रूप का चित्रण है तो वियोगावस्था में विदग्धकारी रूप का चित्रण है। प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण शऋतु तथा बारहमासा की चित्रण पद्धति पर किया गया है।

7. आलंकारिकता - रीतिकाल प्रदर्शन, चमत्कार और रसिकता का युग था। विलासी राजदरबार का प्रभाव जनजीवन पर पड़ चुका था। कवियों को अलंकारशास्त्र के अनुसार स्वयं के काव्य को ढालना पड़ता था। संस्कृत के काव्यशास्त्र से लक्षण लेकर उन्होंने उनके उदाहरण स्वयं ही रचे। उस काल की मनोवृत्ति ही कुछ इस प्रकार की हो चली थी कि अलंकारशास्त्र के ज्ञान के बिना कवि को दरबार में सम्मान मिलना संभव नहीं था। ये कवि चमत्कारप्रिय थे। आचार्य केशव ने लिखा भी है-

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त ।।

8. मुक्तक शैली - रीतिकाल में हमें मुक्तक शैली की प्रमुखता दिखाई देती है। यह शैली रीतिकाल की काव्य प्रवृत्ति के अनुसार थी। इसी कारण वे ही शब्द

अपनाए गए. जो मुक्तक काव्य में सहायक हो सकें। कवित्त, सवैया, बरवै, दोहा आदि इस काल के प्रमुख छंद हैं।

9 ब्रजभाषा का प्रयोग - ब्रजभाषा की प्रतिष्ठा कृष्णभक्त कवियों द्वारा ही की जा चुकी थी। रीतिकालीन कवियों द्वारा उसका और अधिक विकास हुआ। लाक्षणिक प्रयोगों, स्वाभाविक अलंकरण, भावपक्ष की कोमलता एवं सरसता से युक्त होकर रीतिकालीन काव्य में ब्रजभाषा अपने संपूर्ण वैभव के साथ प्रकट हुई। ब्रजभाषा का इन कवियों ने परिमार्जन करके उसे सुसंस्कृत एवं शक्तिशाली बनाया और 200 वर्ष तक वह हिंदी साहित्य क्षेत्र में एकछत्र राज्य करती रही। इसमें कोई संदेह नहीं कि रीतिकाल के रचयिता चाहे सफल आचार्य नहीं बन सके हों किंतु उन्होंने अपने दीर्घ भाषा अभ्यास एवं उसकी सूक्ष्म जानकारी का परिचय अवश्य अपनी शैली की प्रौढता के द्वारा दिया है।

अस्तु, रीतिकालीन काव्य, क्षेत्र की संकीर्णता, रूढ़ियों की परिधि एवं नियमों की श्रृंखलाओं में ही आबद्ध रहा, किंतु इन परिस्थितियों में भी उसने जैसी कोमलता एवं मार्मिकता प्रदर्शित की वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस काल में श्रृंगार का जैसा चित्रण हुआ, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

सभी ने अपने काल की परिस्थितियों से प्रभावित होकर मुख्य रूप से रीतिनिरूपण संबंधी ग्रंथ लिखे जिनके भीतर संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर रस, छंद, अलंकार आदि काव्यांगों के विवेचन के लिए लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किए गए। इस प्रकार इस काल की मुख्य प्रवृत्तियां रीतिनिरूपण और श्रृंगारिकता की तथा गौण प्रवृत्तियां राजप्रशस्ति, भक्ति, नीति तथा प्रकृति आदि अन्य विषयों की कही जा सकती हैं।

13.7 सार - संक्षेप

रीतिकाल (1700-1900) हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण काल था, जिसमें काव्य रचनाएँ श्रृंगारी प्रवृत्तियों पर आधारित थीं। यह काल भक्तिकाल के बाद और

आधुनिक काल से पहले आया। रीतिकाव्य में कविता एक विशेष पद्धति और शैली के अनुसार रची जाती थी, जिसमें प्रेम और श्रृंगार का प्रमुख चित्रण होता था। इस काल के कवियों ने अपनी रचनाओं में शास्त्रीय और काव्यशास्त्र का पालन किया। राजनीतिक अस्थिरता, मुगलों का पतन, और अंग्रेजों का आगमन इस काल के दौरान प्रमुख प्रभाव थे, जिसने साहित्य में श्रृंगार और रीतिप्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया।

13.8 मुख्य शब्द

- **रीतिकाव्य** - शास्त्रीय नियमों के तहत रचित काव्य, जिसमें प्रेम और सौंदर्य का चित्रण होता है।
- **श्रृंगार** - प्रेम और सौंदर्य से संबंधित काव्य रस।
- **रस** - काव्य का वह तत्व जो पाठक में भावनाओं का संचार करता है।
- **काव्यशास्त्र** - काव्य रचना के नियम और सिद्धांत।
- **प्रेमकाव्य** - प्रेम की भावना पर आधारित काव्य।
- **भक्ति** - भगवान के प्रति श्रद्धा और समर्पण।
- **वर्णन** - किसी वस्तु या भाव का विस्तार से विवरण।
- **मुक्तक काव्य** - बिना छंद के रचित काव्य।

13.9 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. असत्य

उत्तर: 2. सत्य

उत्तर: 3. सत्य

उत्तर: 4. सत्य

13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. काव्यशास्त्र - आचार्य शंकर, श्रीराम पब्लिकेशन्स, 2015
2. हिंदी काव्य का इतिहास - डॉ. रामचंद्र शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, 2003
3. रीतिकाव्य का विश्लेषण - डॉ. हरिप्रसाद शर्मा, काव्य भारती प्रकाशन, 2008
4. भारतीय काव्यशास्त्र - पं. सूर्यनारायण यादव, विश्ववाणी प्रकाशन, 2012
5. रीतिकाव्य: सिद्धांत और विमर्श - डॉ. किशोरीदास वाजपेयी, रचनाकार पब्लिकेशन, 2011

13.11 अभ्यास प्रश्न

1. रीतिकाव्य की विशेषताएँ स्पष्ट करें और इसे शास्त्रीय काव्य से कैसे भिन्न माना जाता है, इसका विश्लेषण करें।
2. शृंगार रस की व्याख्या करें। इसके विभिन्न प्रकारों और उदाहरणों के माध्यम से इसे समझाइए।
3. रीतिकाव्य में अलंकार का महत्व क्या है? प्रमुख अलंकारों का उदाहरण देकर उनकी भूमिका को स्पष्ट करें।
4. काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का रीतिकाव्य पर प्रभाव को समझाते हुए, रीतिकाव्य और लोककाव्य के बीच अंतर स्पष्ट करें।
5. रीतिकाव्य में "रस" और "अलंकार" के आपसी संबंध को स्पष्ट करें और इनके काव्य में प्रभाव को उदाहरणों के माध्यम से समझाएं।

इकाई -14

रीतिबद्ध काव्यधारा

14.1 प्रस्तावना
14.2 अध्ययन के उद्देश्य
14.3 रीतिबद्ध काव्यधारा की अवधारणा
14.4 रीतिबद्ध काव्यधारा की विशेषताएं
14.5 रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि
14.6 सार - संक्षेप
14.7 मुख्य शब्द
14.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
14.9 अभ्यास प्रश्न
14.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई में रीतिबद्ध काव्यधारा का विश्लेषण किया गया है, जो हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में उभरी है। रीतिकाव्य संस्कृत काव्यशास्त्र से प्रभावित होकर विकसित हुआ और इसमें काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का पालन करते हुए कविता की रचनात्मकता को एक नए स्तर तक पहुँचाया गया। इस इकाई में रीतिकाव्य के प्रमुख लक्षणों जैसे श्रृंगार, अलंकार, चमत्कार, मुक्तक रचनाएँ, और भाषा सौंदर्य पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसके साथ ही, रीतिकाव्य के प्रमुख कवियों और उनके योगदान का भी वर्णन किया गया है, जिससे इस काव्यधारा के महत्व और विशेषताओं को समझा जा सके।

14.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- 'रीतिबद्ध काव्यधारा' की अवधारणा और इसका संस्कृत काव्यशास्त्र से संबंध।
- रीतिकाव्य की विशेषताएँ, जैसे संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव, लक्षण ग्रंथों का निर्माण, और श्रृंगारी भावनाओं की व्यंजना।
- रीतिकाव्य में अलंकरण, चमत्कार प्रदर्शन और मुक्तक रचनाओं की प्रधानता।
- रीतिकाव्य के प्रमुख कवियों, जैसे चिंतामणि, मतिराम, देव, भिखारीदास, और जसवंत सिंह की भूमिका और उनके योगदान।
- रीतिकाव्य की भाषा सौंदर्य और प्रभावशाली चित्रण क्षमता।

14.3 रीतिबद्ध काव्यधारा की अवधारणा

रीतिबद्ध काव्य के विवेचन से पूर्व 'रीति' के अर्थ को समाना आवश्यक है। संस्कृत काव्यशास्त्र के अंतर्गत 'रीति' शब्द काव्य के उस विशिष्ट अंग के लिए रूढ़ है जिसे काव्य की आत्मा के रूप में घोषित कर आचार्य वामन ने तत्संबंधी पृथक संप्रदाय का प्रवर्तन किया। उनकी विधायी विशेष पद्धति विशेष लोकव्यवहार में 'मार्ग' शब्द से ही अभिहित होती है। संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द काव्यरचना के मार्ग अथवा पद्धति विशेष में व्यवहृत हुआ है। हिंदी के रीतिकालीन कवियों में भी अनेक ऐसे हैं जिन्होंने काव्य-रचना पद्धति को 'रीति' और उसके पर्याय 'पंथ' से ही अभिहित किया है। अतएव व्युत्पत्ति प्रयोग और परंपरा के आधार पर कहा जा सकता है कि 'रीति' शब्द संस्कृत के समान हिंदी में भी बहुत पहले से काव्य-रचना पद्धति के लिए रूढ़ है।

जिन कवियों ने काव्यशास्त्र का आधार लेकर लक्षण-ग्रंथों की रचना की, लक्षणों का विवेचन करते हुए सुंदर उदाहरणों की योजना की, रीतिबद्ध कवि कहलाए, उन्हें लक्षण-ग्रंथकार भी कहा गया। इसी काल में श्रृंगारी कवियों की श्रेणी में से एक ऐसा वर्ग भी सामने आया, जिन्हें रीतिसिद्ध कवि माना गया। इन्होंने यद्यपि लक्षण-उदाहरण पद्धति को तो नहीं अपनाया, पर इनका काव्य भी काव्यशास्त्रीय परिपाटी के निकट रहा। रीतिबद्ध कवियों की प्रेरणा का स्रोत संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा ही रही है, जिसका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। आचार्य शुक्ल के अनुसार- "इन रीति ग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यंत प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण ग्रंथों से चुनकर इकट्ठे करें तो उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।

14.4 रीतिबद्ध काव्यधारा की विशेषताएं

1. संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव - रीतिबद्ध कवियों ने श्रृंगारकालीन रीतिग्रंथों की रचना की जो संस्कृत के आचार्य कवियों से प्रभावित थे। कुछ ग्रंथ तो सीधे-सीधे छायानुवाद रूप में भी हैं। यथा कुलपति मिश्र का 'रस रहस्य' तथा जसवंत सिंह का 'भाषा भूषण' आदि। रीति निरूपण के सैद्धांतिक पक्ष में तो प्रायः मौलिकता नहीं है।

2. लक्षण ग्रंथों का निर्माण - रीतिबद्ध कवियों की यह प्रमुख विशेषता है। उन्होंने रस, रीति, अलंकार, छंद, शब्दशक्ति का विस्तृत विवेचन किया है। इन कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र में हुई विवेचना के आधार पर ही हिंदी काव्यशास्त्र के निर्माण का प्रयत्न किया था। भामह, उद्भट, आनंदवर्द्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट, जयदेव आदि के ग्रंथ उनके आधार और प्रेरणा स्रोत रहे।

3 लौकिक श्रृंगार की व्यंजना - रीति कवियों का क्षेत्र श्रृंगार में ही सिमटकर रह गया जो सर्वथा लौकिक ही था। यद्यपि रीतिकाल को श्रृंगार की परंपरा पूर्ववर्ती कवियों से ही प्राप्त हुई, पर भक्तिकाल में उस पर जो अलौकिकता का आवरण था, वह हट गया। इसी कारण उन्होंने स्वीकार भी किया है -

आगे के कवि रीझिहैं तो सुकविताई
न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ है।

संयोग श्रृंगार के अंतर्गत अनुभावों की भी व्यंजना की है -

कहत, नटत, रीझत, खिझात, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत है, नैननु हीं सब बात ।।

वियोग वर्णन में ऊहात्मकता के चित्र अधिक हैं -

आँधाई सीसी सु लखि, विरह-बरनि बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौं, छीटों हुई न गात ।।

4. पद्यबद्धता के कारण विवेचन में अस्पष्टता - हिंदी के ग्रंथकारों ने प्रायः पद्य में ही रीति ग्रंथों का प्रणयन किया है। कहीं-कहीं बीच-बीच में गद्य का भी पुट मिलता है। किंतु पद्य की प्रधानता से काव्यशास्त्र का विवेचन इन ग्रंथों में संस्कृत के ग्रंथों की भांति सुलझे एवं स्वाभाविक रूप में नहीं हो पाया है।

5. चमत्कार प्रदर्शन - अधिकांश रीतिकवि दरबारी थे। फलतः चमत्कार प्रदर्शन की भावना का उनमें होना स्वाभाविक है। इनकी यह विशेषता विलक्षण है कि इन्होंने सामान्य बात को भी चमत्कारी ढंग से कहकर चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

6. अतिशय अलंकरण की प्रवृत्ति - इस काल में अलंकारों की प्रधानता के कारण ही सम्भवतः डॉ. रसाल ने इसे 'अलंकृत काल' कहा है। भाषा-परिष्कार, अलंकारों का सार्थक मनोरम उपयोग, संक्षेप में बहुत अधिक कहने की प्रवृत्ति, चमत्कार प्रदर्शन, जीवन के आकर्षक एवं मनोरम प्रसंगों की ही व्यंजना करना, वाग्वैदग्ध्य, काव्य-नियमों के परिपालन के प्रति सचेत रहना आदि बातों ने इस काव्य को

कलापक्ष की दृष्टि से काफी समृद्ध बना दिया है। वस्तुतः इस काव्य में भावना की सुकुमारता, अनुभूति की सत्यता और गहनता एवं कल्पना की मौलिकता की अपेक्षा उक्ति की वक्र-व्यंजना पर ही अधिक बल दिया गया। कवियों की दृष्टि काव्य की आत्मा रस की अपेक्षा अभिव्यक्ति की मनोरमता और वक्रता के प्रति अधिक रही। वस्तुतः इस अलंकरण की प्रवृत्ति के मूल में दरबारी प्रभाव ही कार्य कर रहा था क्योंकि दरबार में उक्ति वैचित्र्य के द्वारा प्रदर्शन ही श्रेयस्कर माना जाता है।

7. मुक्तक की प्रधानता - रीतिकाव्य में मुक्तक रचनाओं की प्रधानता है। इसके कारण हैं- लक्षण ग्रंथों का निर्माण तथा दरबारी वातावरण का प्रभाव। लक्षण ग्रंथ मुक्तक-शैली में लिखे जा सकते हैं, साथ ही श्रृंगार की प्रधानता के कारण भी मुक्तक शैली ही इस काल के कवियों के लिए अधिक उपयुक्त थी। दरबारी। वातावरण भी इसके अनुकूल था क्योंकि दरबारों में प्रबंध सुनने की न तो रुचि थी और न ही अवकाश ही था। मनोरंजन के लिए मुक्तक ही उपयुक्त था।

8. प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण - रीतिकाव्य में मानवीय भावों को उद्दीप्त करने में सहायक प्रकृति का रूप ही उभरकर सामने आया। इस काल से पूर्व भी प्रकृति का यही रूप रहा था। रीतिकाल के कवियों का प्रकृति का वर्णन बहुत ही प्रभावी और सरस रहा है।

9. भाषा - इस काल में भाषा सौंदर्य अपने चरम पर रहा। यद्यपि आचार्य शुक्ल ने इन कवियों की भाषा में मिश्रण की प्रवृत्ति और व्याकरण के नियमों की अवहेलना करने का दोष लगाया है, पर कुछ विद्वानों की यह भी राय है कि अन्य भाषाओं के शब्द अपना लेने से भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का विकास ही हुआ है। डॉ. राजनाथ शर्मा ने इस काल के कवियों की भाषा शक्ति की महत्ता स्वीकार करते हुए माना कि इस काल का सा भाषा-परिष्कार और सौंदर्य छायावादी काव्य के अतिरिक्त हिंदी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा में कोमलकांत पदावली, अलंकारों का रम्य, सार्थक प्रयोग, मुहावरों, कहावतों आदि का सुंदर

और प्रचुर उपयोग जैसा इस काल में हुआ. उसकी हल्की सी झलक कृष्ण भक्ति काव्य में ही मिलती है।

अस्तु, उपयुक्त प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि रीतिकाव्य क्षेत्र की संकीर्णता, रूढ़ियों की परिधि एवं नियमों की श्रृंखलाओं में ही आबद्ध रहा, किंतु इन परिस्थितियों में भी उसने जैसी सरसता, कोमलता एवं मार्मिकता प्राप्त की, वह कम महत्व की बात नहीं है। चाहे उन्होंने केवल श्रृंगार को ही लिया, किंतु उसके विभिन्न अंगों का जैसा चित्रण उन्होंने किया, वह अन्यत्र सुलभ नहीं उनकी दृष्टि चाहे नायिका भेद तक ही सीमित रही, किंतु उनकी जैसी सजीव एवं हाव-भावपूर्ण अनेकानेक मूर्तियां उन्होंने प्रस्तुत की हैं, वैसी किसी अन्य साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होतीं। साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि हिंदी में ये पहले कवि थे, जिन्होंने कला को शुद्ध कला के रूप में देखा, सौंदर्य की साधना को ही अपने कर्तव्य का चरम लक्ष्य स्वीकार किया।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न 1. रीतिकाव्य में _____ का प्रमुख प्रभाव था, जिससे यह काव्यशास्त्र का निर्माण हुआ।

प्रश्न 2. रीतिकाव्य में _____ की प्रधानता रही है, जिसमें लक्षण ग्रंथों का निर्माण और श्रृंगार की प्रमुखता थी।

प्रश्न 3. रीतिकाव्य में _____ के माध्यम से कविता की आत्मा और वक्र-व्यंजना पर अधिक बल दिया गया।

प्रश्न 4. रीतिकाव्य के कवियों ने _____ का प्रभाव लेकर श्रृंगार के विभिन्न अंगों का चित्रण किया।

14.5 रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि

ये वे कवि थे जिन्होंने रीति परंपरा में बंधकर लक्षण-ग्रंथ प्रमुख रूप से लिखे। जो लक्षण इन्होंने प्रस्तुत किए उन्हें स्पष्ट एवं पुष्ट करने के लिए उदाहरणस्वरूप अपनी कविता भी प्रस्तुत की। चिंतामणि, मतिराम, देव, भिखारीदास, जसवंत सिंह आदि इसी प्रकार के कवि हैं।

14.6 सार - संक्षेप

इस इकाई में रीतिबद्ध काव्यधारा का विश्लेषण किया गया है, जिसमें संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव, लक्षण ग्रंथों का निर्माण, श्रृंगार और अलंकारों का प्रमुख स्थान, और काव्यशास्त्र के सिद्धांतों पर आधारित काव्यरचनाएँ शामिल हैं। रीतिकाव्य में चमत्कार, अतिशय अलंकरण और मुक्तक रचनाओं की प्रवृत्तियाँ भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। इसके प्रमुख कवियों ने काव्यशास्त्र को व्यावहारिक रूप से प्रस्तुत किया और भाषा सौंदर्य को शिखर तक पहुँचाया। यह इकाई रीतिकाव्य की विशिष्टताओं और इसके योगदान को उजागर करती है।

14.7 मुख्य शब्द

1. **रीति** - काव्य रचना की पद्धति।
2. **लक्षण-ग्रंथ** - काव्यशास्त्र के सिद्धांतों पर आधारित ग्रंथ।
3. **श्रृंगार** - प्रेम या आकर्षण से संबंधित भावनाएं।
4. **अलंकार** - काव्य में सौंदर्य के लिए उपयोगी काव्य उपकरण।
5. **चमत्कार** - सामान्य बात को असाधारण ढंग से प्रस्तुत करना।
6. **मुक्तक** - स्वतंत्र काव्य रचनाएं, बिना निश्चित छंद के।
7. **काव्यशास्त्र** - काव्य रचनात्मकता के सिद्धांतों का शास्त्र।
8. **उद्दीपन** - काव्य में भावों को उभारने के लिए प्रकृति का चित्रण।

14.8 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. संस्कृत काव्यशास्त्र

उत्तर: 2. मुक्तक रचनाओं

उत्तर: 3. चमत्कार प्रदर्शन

उत्तर: 4. दरबारी प्रभाव

14.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी काव्यशास्त्र: एक अध्ययन - लेखक: डॉ. रघुकुल तिवारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2001
2. हिंदी काव्यशास्त्र का आधुनिक परिप्रेक्ष्य - लेखक: डॉ. अरविंद कुमार सिंह, साहित्य भवन, 2008
3. हिंदी काव्यशास्त्र: सिद्धांत और व्यावहारिकता - लेखक: डॉ. मनीषा शर्मा, वाणी प्रकाशन, 2013
4. काव्यशास्त्र का सांस्कृतिक अध्ययन - लेखक: डॉ. शंकर दयाल मिश्रा, राजकमल प्रकाशन, 2016
5. हिंदी काव्य की आधुनिक व्याख्या - लेखक: डॉ. रेखा वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, 2019
6. हिंदी काव्यशास्त्र का समाजशास्त्र - लेखक: डॉ. सीमा त्रिपाठी, साहित्य अकादमी, 2022

14.10 अभ्यास प्रश्न

1. रीतिबद्ध काव्यधारा की विशेषताओं को संक्षेप में लिखें।

2. 'रीति' शब्द का काव्यशास्त्र में क्या अर्थ है?

3. रीतिकाव्य में श्रृंगारी काव्य का स्थान स्पष्ट करें।

4. रीतिकाव्य के प्रमुख कवियों के बारे में बताएं।

5. रीतिकाव्य में अलंकारों के उपयोग पर चर्चा करें।

इकाई -15

रीतिसिद्ध काव्यधारा

15.1 प्रस्तावना
15.2 अध्ययन के उद्देश्य
15.3 रीतिसिद्ध काव्यधारा की अवधारणा
15.4 रीतिसिद्ध काव्यधारा की विशेषताएं
15.5 रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि
15.6 सार - संक्षेप
15.7 मुख्य शब्द
15.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
15.10 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

रीतिसिद्ध काव्यधारा हिंदी साहित्य के रीतिकाल की महत्वपूर्ण धारा है, जिसमें कवियों ने काव्यशास्त्र के नियमों का पालन अनिवार्य रूप से नहीं किया, बल्कि उनके काव्य में ये नियम सहजता से प्रकट हुए। यह धारा उन रचनाओं का प्रतिनिधित्व करती है, जहां कवियों का उद्देश्य लक्षणों का प्रत्यक्ष वर्णन न होकर अपनी कवित्व-शक्ति का प्रदर्शन होता है। रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य में अंतर यही है कि रीतिबद्ध काव्य में कवि नियमों का स्पष्ट पालन करते हैं, जबकि रीतिसिद्ध में नियम स्वाभाविक रूप से दिखाई देते हैं। इस धारा के कवियों, जैसे बिहारी और सेनापति, ने काव्य रचनाओं में परोक्ष रूप से

काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन किया, जो उनकी गहन साहित्यिक समझ और काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण को प्रदर्शित करता है।

15.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- रीतिसिद्ध काव्यधारा की अवधारणा और इसके विकास की पृष्ठभूमि।
- रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य के बीच अंतर और इनकी विशेषताओं में आए भेद को पहचानना।
- रीतिबद्ध काव्य में काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन और रीतिसिद्ध काव्य में इन नियमों का स्वतः अभिव्यक्त होना।
- रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवियों, जैसे बिहारी और सेनापति के योगदान और उनके काव्य में समाहित काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण।
- दोनों काव्यधाराओं की साहित्यिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का सम्यक् आकलन।

15.3 रीतिसिद्ध काव्यधारा की अवधारणा

रीतिकाव्य में दूसरा वर्ग उन ग्रंथों का है जिनमें रचयिता लक्षण देने के चक्कर में नहीं पड़ा केवल अपना कवित्व-प्रदर्शन उनका उद्देश्य रहा है। इन ग्रंथों की विशेषता यह रही है कि इनका प्रत्येक छंद किसी लक्षण का उदाहरण न होते हुए भी किसी लक्षण का उदाहरण बन सकता है, कारण इनके रचयिताओं ने इनकी रचना करते समय जाने-अनजाने में काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन कर लिया है। शास्त्रीय नियमों में बद्ध रीतिबद्ध काव्य-संबंधी उदाहरणों से इन छंदों का अंतर यही है कि वे जहां किसी विशिष्ट लक्षण के साथ जुड़े हुए हैं वहां ये शास्त्रीय नियमों में बद्ध होते हुए भी सर्वथा स्वतंत्र हैं। दूसरे शब्दों में

काव्यशास्त्रीय नियमों की स्थिति इनके भीतर ही स्वतः सिद्ध है- अर्थात काव्यशास्त्र संबंधी विशिष्ट नियम इनके भीतर सहज रूप से इतने घटित हुए प्रतीत होते हैं कि यह इन नियमों के अनुरूप रचे हुए प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है कि ये नियम इस छंद की रचना के समय कवि के संस्कार में गहराई से बैठे हुए थे।

15.4 रीतिसिद्ध काव्यधारा की विशेषताएं

वस्तुतः रीतिबद्ध कवि एवं रीतिसिद्ध कवियों की विशेषताएं लगभग समान ही हैं। दोनों में काव्यशास्त्रीय संस्कार तो समान रूप से रहते ही हैं, अंतर यदि है भी तो केवल इतना ही कि रीतिबद्ध काव्य-रचना में काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन अनिवार्यतः किया जाता है जबकि रीतिसिद्ध काव्य में से नियम संस्कारवश स्वतः फलीभूत हो जाते हैं। अतएव रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध विशेषण किसी कवि विशेष के लिए न जोड़े जाकर उसके ग्रंथ अथवा रचना विशेष के साथ ही जुड़ने चाहिए। एक ही कवि की रचनाएं अपनी विशेषताओं के अनुसार भिन्न हो सकती हैं। रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों की अभिव्यंजना पद्धति भी समान है जिसमें भाषा का स्वरूप और सौष्ठव एक कवित्त, सवैया और दोहे या मुक्तक की सभी विशेषताओं सहित प्रयोग किसी भी प्रकार से प्रतीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त इन दोनों की सांस्कृतिक, साहित्यिक और काव्यशास्त्रीय पृष्ठभूमि तथा दरबारी परिवेश भी समान है। अंतर है तो यही की रीतिबद्ध काव्य काव्यांक विशेष के विवेचन में लक्षण के साथ उसके उदाहरण के रूप में लिखा गया है और रीतिसिद्ध लक्षणों के बिना और स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है- यद्यपि कवियों के काव्यशास्त्रीय सहकारों के कारण नियमबद्धता इसके मूल में विद्यमान है। कहने का अभिप्राय है कि रीतिसिद्ध काव्य रीतिबद्ध काव्य का एक प्रकार से परिष्कृत रूप है।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न 1. रीतिसिद्ध काव्य रीतिबद्ध काव्य का _____ रूप है, जिसमें काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन स्वतः ही फलीभूत हो जाता है।

प्रश्न 2. रीतिसिद्ध काव्य में लक्षणों के बिना _____ रूप में काव्य प्रस्तुत किया जाता है।

15.5 रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि

ऐसे कवि जिन्होंने लक्षण बताने वाले ग्रंथ तो नहीं लिखे, फिर भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस परंपरा की मान्यताओं का अपने काव्य में उपयोग किया और सृजन के क्षणों में उनका पूर्ण ध्यान भी रखा। बिहारी, सेनापति इसी प्रकार के कवि हैं।

15.6 सार - संक्षेप

रीतिसिद्ध काव्यधारा रीतिकाल के हिंदी साहित्य की एक विशिष्ट धारा है, जिसमें कवियों ने लक्षणों का प्रत्यक्ष वर्णन करने के बजाय अपनी काव्य प्रतिभा को सहज रूप में अभिव्यक्त किया। इस काव्यधारा की विशेषता यह है कि इसकी रचनाओं में काव्यशास्त्रीय नियम स्वतः ही प्रकट होते हैं, भले ही कवियों ने उन्हें अनिवार्य रूप से नहीं अपनाया। रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य में मुख्य अंतर यह है कि रीतिबद्ध काव्य में नियमों का कठोरता से पालन किया गया है, जबकि रीतिसिद्ध काव्य में ये नियम कवि के संस्कारों से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं। रीतिसिद्ध काव्य को रीतिबद्ध का परिष्कृत रूप भी माना जा

सकता है। इस धारा के प्रमुख कवियों, जैसे बिहारी और सेनापति, ने अपनी रचनाओं में काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण को इतनी गहराई से आत्मसात किया कि उनके काव्य में नियमबद्धता होते हुए भी एक स्वतंत्रता और सहजता दिखाई देती है, जिससे यह धारा अपने आप में एक अद्वितीय स्थान प्राप्त करती है।

15.7 मुख्य शब्द

- **रीतिसिद्ध काव्य** - ऐसा काव्य जिसमें नियमों का पालन स्वाभाविक रूप से होता है, बिना किसी प्रयास के।
- **रीतिबद्ध काव्य** - काव्य जिसमें नियमों का कठोरता से पालन किया गया है।
- **काव्यशास्त्र** - काव्य के नियमों और सिद्धांतों का अध्ययन।
- **लक्षण** - काव्य की विशिष्ट विशेषताएँ, जैसे अलंकार और रस।
- **कवित्व-शक्ति** - कवि की रचनात्मक और सृजनात्मक क्षमता।
- **संस्कार** - काव्यशास्त्र की गहरी समझ, जो रचनाओं में स्वाभाविक रूप से प्रकट होती है।
- **स्वाभाविकता** - सहज रूप में नियमों का आना।
- **बिहारी** - रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि।
- **सेनापति** - रीतिसिद्ध काव्यधारा के एक अन्य प्रमुख कवि

15.8 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. **परिष्कृत**

उत्तर: 2. **स्वतंत्र**

15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रीतिकाव्य और उसका साहित्यिक महत्व - लेखक: डॉ. कृष्णकांत, वाणी प्रकाशन, 2004
2. हिंदी साहित्य और रीतिकाव्य: एक समग्र अध्ययन - लेखक: डॉ. सुमन शर्मा, साहित्य भवन, 2010
3. रीतिकाव्य का सामाजिक प्रभाव - लेखक: डॉ. पंकज त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, 2015
4. हिंदी रीतिकाव्य: एक पुनः मूल्यांकन - लेखक: डॉ. शशि शर्मा, वाणी प्रकाशन, 2017
5. रीतिकाव्य और उसकी प्रवृत्तियाँ - लेखक: डॉ. राघवेंद्र शर्मा, भारतीय साहित्य परिषद, 2020
6. हिंदी रीतिकाव्य और उसका सांस्कृतिक संदर्भ - लेखक: डॉ. अरविंद कुमार, साहित्य अकादमी, 2022

15.10 अभ्यास प्रश्न

1. रीतिसिद्ध काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?
2. रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य में क्या अंतर है? उदाहरण सहित समझाइए।
3. रीतिसिद्ध काव्य में 'संस्कार' का क्या महत्व है?
4. रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए और उनके योगदान का वर्णन कीजिए।
5. रीतिसिद्ध काव्य को रीतिबद्ध काव्य का परिष्कृत रूप क्यों माना जाता है?

इकाई -16

रीतिमुक्त काव्यधारा

16.1 प्रस्तावना

16.2 अध्ययन के उद्देश्य

16.3 रीतिमुक्त काव्यधारा की अवधारणा

16.4 रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताएं

16.5 रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि

16.6 सार - संक्षेप

16.7 मुख्य शब्द

16.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

16.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

16.10 अभ्यास प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

रीतिमुक्त काव्यधारा हिंदी साहित्य के मध्यकाल की एक महत्वपूर्ण धारा है, जो 17वीं और 18वीं शताब्दी में विकसित हुई। यह काव्यधारा मुख्यतः उन कवियों द्वारा अपनाई गई जिन्होंने दरबारी रीति-परंपरा और उसकी कृत्रिमता को अस्वीकार कर व्यक्तिगत प्रेम, भावप्रवणता और आत्मअनुभूति को प्रमुखता दी। रीतिमुक्त कवियों ने अपने काव्य में शृंगार, भक्ति, विरह और प्रेम को एक नई दृष्टि से प्रस्तुत किया, जिसमें भावनाओं की गहराई और अनुभूति की मौलिकता देखने को मिलती है। घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव जैसे कवियों ने इस धारा में रचनाएँ कीं, जो प्रेम की गहरी अभिव्यक्ति, नारी सौंदर्य की स्वच्छंद व्याख्या, और व्यक्तिगत अनुभूतियों की मार्मिकता से युक्त हैं। रीतिमुक्त काव्य का उद्देश्य न केवल प्रेम की शुद्धता को व्यक्त करना था,

बल्कि सामाजिक बंधनों और परंपराओं से मुक्त होकर जीवन की गहरी भावनाओं का चित्रण करना भी था।

16.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख पहलुओं, जैसे स्वच्छंद प्रेम, व्यक्तिगत अनुभव की अभिव्यक्ति और काव्यशास्त्रीय परंपराओं से मुक्ति।
- रीतिमुक्त काव्य में श्रृंगार, भक्ति और विरह की गंभीर अनुभूतियों को सहजता और भावप्रवणता के साथ प्रस्तुत करना।
- रीतिमुक्त कवियों द्वारा परंपरागत काव्य नियमों से मुक्त होकर निजी प्रेम, नारी सौंदर्य और विरह भाव की अभिव्यक्ति।
- रीतिमुक्त कवियों द्वारा सामाजिक बंधनों को चुनौती देना और उनकी रचनाओं की भाषा की सहजता, भावप्रवणता और शब्द सौंदर्य की विशिष्टता।

16.3 रीतिमुक्त काव्यधारा की अवधारणा

रीतिमुक्त कवि वे थे जो अपनी अनुभूति को, अपनी प्रेम वेदना को तथा अपनी विरह व्यंजना को काव्य में अश्रुओं सा तरल एवं सहज बनाकर ढाल रहे थे। रीतिमुक्त कवियों ने रीति के सारे मानदंड ठुकरा कर, दरबारों का बहिष्कार करते हुए निजी प्रेम की मर्मस्पर्शी पीड़ा को गीतों में पिरोया। ये कवि अपनी स्वच्छंद एवं उन्मुक्त चेतना के कवि थे जिन्हें उनकी प्रियतमाओं का वियोग उपहार स्वरूप मिला था। श्रृंगार तथा भक्ति के सौंदर्य युक्त पदों का सृजन करने वाले इन प्रेम चितेरों ने संयोग पक्ष का सर्वथा बहिष्कार किया। संयोग कहीं आया भी तो स्मृति बनकर। इनका विरह भी रीतिपरक श्रृंगार के समान नारी का ऊहात्मक

विरह नहीं दर्शाता, यहां तो पुरुष का विरह वर्णित है। स्वच्छंद काव्य के ये कवि विरह के अतिरेक में फारसी सूफी काव्य के उस साधक की तरह हो जाते हैं जो प्रियतमा में ही साक्षात ब्रह्म या परमपुरुष की कल्पना करने लगता है। यहां तो ये स्वयं को ही प्रेयसी रूप नारी समझकर पुरुषरूप प्रिया के प्रति विरह भाव की अभिव्यक्ति करने लगते हैं।

कुछ विद्वान भक्ति, दर्शन, प्रकृति, राज-प्रशस्ति, वीर तथा ज्योतिष आदि विषयों से संबद्ध काव्यसृजन करने वालों को रीतिमुक्त काव्यधारा के अंतर्गत ही गिनते हैं। इसी युग में "रीति पद्धति से मुक्त रहकर काव्यकर्म करने वाले ऐसे बहुत से कवि भी थे जिन्होंने अपनी कविता का वर्ण्य-विषय रीतिमुक्त कवियों से भिन्न तथा प्रेम के स्थान पर भक्ति, प्रकृति, प्रशस्ति, नीति को बनाया। यह काव्यधारा बंधन या परिपाटियों से मुक्त थी। वास्तव में ये कवि स्वच्छंद प्रवृत्ति के और उन्मुक्त चेतना के कवि थे। इन कवियों ने रीतिबद्ध कवियों की दृष्टि को अनुपयुक्त कहकर ललकारा।

रीतिमुक्त कवि संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा में बंधकर लिखना नहीं चाहते थे। ये किसी भी रीति पर चलकर या परिपाटी का पालन कर काव्यसृजन करने को काव्यप्रतिभा के बंधन की तरह मानते थे। इसी काव्यप्रतिभा को बांधने के विरूद्ध इन्होंने विद्रोह भाव की अभिव्यक्ति की। इनकी इसी विद्रोही प्रतिक्रिया ने उनकी अभिव्यंजना शैली को प्रखर और मुखर भी किया। रीतिमुक्त काव्य रीतिबद्ध या रीतिकाव्य की तरह आत्मप्रदर्शन परक, वस्तु प्रधान अथवा चमत्कार प्रधान न होकर आत्माभिव्यक्ति एवं व्यक्ति प्रधान काव्य कहा जा सकता है। डॉ. महेंद्र कुमार ने लिखा भी है- "रीतिमुक्त काव्य के अंतर्गत प्रेम का अर्थ मन का उत्कट उन्मुखीभाव है जिसकी अभिव्यक्ति करने के लिए प्रेमी समस्त मर्यादाओं का उल्लंघन कर डालता है। रीतिकाव्य के समान मर्यादाभीत विलासी के इंद्रियसुख की आतुर अभिलाषा नहीं जिसे वह बहुत बड़ा मूल्य देकर क्रय करना तो चाहता

है पर अपनी नैतिक प्रतिष्ठा पर आंच न आने देने के उद्देश्य से समाज की दृष्टि से ओझल भी रहना चाहता है।"

16.4 रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताएं

1. रीतिस्वच्छंदता इस धारा के कवि भावुक थे तथा उन्होंने अपने को किसी भी काव्यशास्त्रीय परंपरा से आबद्ध नहीं रखा। काव्यशास्त्र का उन्हें पर्याप्त ज्ञान था पर फिर भी उन्होंने अलंकार, छंद, नायक-नायिका भेद, रीति या वक्रोक्ति आदि सिद्धांतों की पद्धति विशेष का अनुकरण नहीं किया। उनका विश्वास अनुभूति की मौलिक प्रस्तुति में रहा। उन्होंने रीतिपरिपाटी से स्वयं को पूर्णतः मुक्त रखा। ये लक्षणों के फेर में नहीं पड़े तथा निजी प्रेम के उच्छवासों को ही काव्यबद्ध करते रहे और इसमें उन्हें सफलता भी मिली।

2. स्वच्छंद प्रेम जैसा कि अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है, इन कवियों के जीवन एवं काव्य में स्वच्छंद प्रेम या रोमांसिकता की प्रधानता है। स्वच्छंद प्रेम का अर्थ यह है कि इन्होंने विशुद्ध सौंदर्यानुभूति की प्रेरणा से जाति समाज एवं धर्म के बंधनों की अवहेलना करते हुए ऐसी नायिकाओं से प्रणय संबंध स्थापित किया था, जो अन्य जाति से संबंधित थीं। ऐसी स्थिति में इन्हें प्रेम के क्षेत्र में पर्याप्त साहस, संघर्ष एवं त्याग का परिचय देना पड़ा। इन्होंने प्रेम के क्षेत्र में सत्यता, गंभीरता एवं औदात्य का परिचय दिया। यथा -

एक सुजान के आनन पै, कुरबान जहां रूप जहां को।
जानि मिलै तो जहान मिलै, नहीं जान मिलै तो जहान कहां कौ।

3. प्रेरणा स्रोत एवं काव्य-प्रयोजन प्रस्तुत परंपरा के कवियों ने सामान्यतः स्वानुभूतियों की अभिव्यक्ति की प्रेरणा से काव्य-रचना की है, इस क्षेत्र में उन्होंने किसी बाह्य निर्देश को स्वीकार नहीं किया है। यथा घनानंद ने कहा भी है -

लोग हैं लागि कवित्त बनावत
मोहिं तो मोरे कवित्त बनावत।

वस्तुतः इस परंपरा के कवि सहजानुभूति से प्रेरित काव्य को सच्चा मानते थे। चेष्टापूर्वक रचित काव्य का तो उन्होंने उपहास किया है। इससे स्पष्ट है कि कवियों ने सच्ची कविता के मर्म को समझकर सहजानुभूति एवं सच्ची प्रेरणा के महत्व को स्वीकार किया था तथा यही कारण है कि हम इनके काव्य में काव्येतर तत्वों के स्थान पर अनुभूति की प्रधानता पाते हैं।

4 नारी सौंदर्य के प्रत्ति आस्था - इन कवियों ने नारी के व्यक्तिव एवं सौंदर्य को आस्था की दृष्टि से देखते हुए उसका चित्रण अत्यंत स्वच्छ, सूक्ष्म एवं उदात्त रूप में किया है। उन्होंने परंपरा के अनुसार नखशिख की स्थूल परिपाटी का निर्वाह करने के स्थान पर उनके सौंदर्य के प्रभाव की व्यंजना की है। यथा-

छवि को सदन, गोरो बदन रुचिर भाल
रस निचुरत मृदु मीठी मुस्क्यानि में।

5. विरह की प्रधानता - इनमें से अधिकांश कवियों का प्रेमपूर्ण जीवन प्रायः प्रेयसी की मधुर स्मृति में ही व्यतीत हुआ था। सामाजिक परिस्थितियों की विषमता के कारण वे अपने जीवन में संयोग की घड़ियां प्राप्त करने में असफल रहे। यही कारण है कि उनके काव्य में विरह वेदना की अभिव्यक्ति अत्यंत गंभीर एवं मार्मिक रूप में हुई है। यथा -

अती सूधो सनेह को मारग है, यहां नैक सयानप बांक नहीं
यहां सूधो चलै तजि आपनपौ, झिझकें कपटी ते निसांक नहीं।

6. वैयक्तिकता - हिंदी साहित्य में कदाचित ये पहले कवि हैं, जिन्होंने लौकिक प्रेम की वैयक्तिक अनुभूतियों को निःसंकोच रूप में व्यक्त किया है। इन्होंने अपनी प्रेम कहानी सुनाने के लिए न तो राधा-कृष्ण की भक्ति का आवरण उधार लिया और न ही किसी रत्नसेन या पद्मावती का आश्रय ग्रहण किया। साथ ही अपनी प्रेयसियों को स्वतः संबोधित करने का साहस भी किया है। वस्तुतः ऐसी वैयक्तिकता आगे चलकर छायावादी कवियों में ही प्राप्त होती है।

7. भावप्रवणता - रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि भावप्रवण थे। प्रेम की पीड़ा को स्याही बनाकर अपने हृदय के उद्‌गारों को लिखना इनकी रूचि बन गई थी। भाव विभोर होकर ये ऐसे प्रवाहित होने लगते हैं कि अभिव्यंजना के सभी उपकरण स्वतः ही भावों को गति प्रदान करने के लिए उपस्थित होते चले जाते हैं। भावावेग इनकी कविता की प्रेरणा तो बनता ही है, साथ ही हेतु भी बन जाता है। विषम प्रेम के प्रति आसक्ति इन प्रेमियों के तन-मन में पूरे प्राणपण में मौजूद है।

8. अभिव्यंजना सौष्ठव - रीतिमुक्त कवियों का भावावेग अभिव्यंजना के सभी उपकरणों को अपने अनुकूल ढालकर सहज, स्वाभाविक एवं प्रभावी तो बनाता ही है साथ ही आलंकारिकता तथा कृत्रिमता आदि दोषों से मुक्त रखता है। भाषा को अलंकारों, लाक्षणिक प्रयोगों तथा लयात्मक विधानों से सज्जित कर ये कवि अभिव्यंजना-शिल्प के नये आयाम खोलते हैं। सहज स्वाभाविक तथा संतुलित शब्द प्रयोग, अपेक्षानुसार अप्रस्तुत विधान एवं चमत्कार पैदा करती वाग्गवदग्धता ही मार्मिक व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति का कारण बनती है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग लोकजीवन से जोड़ता है तो उक्ति-वैचित्र्य कविता में कौतूहल पैदा करता है।

इन कवियों ने शब्दों का परिमार्जित प्रयोग किया। समास वक्रता इसमें नहीं है। मोहक शब्द, वक्रता और उसकी लोच ध्वनिगत आभा तथा अर्थगत व्यंजना, सभी मिलकर भाषा को अद्‌भुत बना देते हैं। इनकी मुहावरेदार भाषा और शब्दों की बारीक अभिव्यक्ति क्षमता वास्तव में अतुलनीय है। नाद, संगीत, लय का प्रवाह इन्होंने विशेष ध्यान रखा है। इसी प्रकार उक्ति-वैचित्र्य काव्य भंगिमा को तथा उसकी व्यंजकता को स्पष्ट करता है। सरल, मनोहारी तथा रंग वैभव से संपन्न बिंबयोजना इनकी कलात्मकता का परिचय देती है।

वस्तुतः कह सकते हैं कि रीतिमुक्त काव्यधारा के इन भावप्रवण कवियों ने अपने काव्य को पूरी ईमानदारी से, हृदयगत तल्लीनता एवं भावगत सच्चाई से प्रभावी

बनाया है। भाव तथा कला की दृष्टि से यह काव्यधारा पूरी तरह से एक विशिष्ट काव्यधारा बनकर उभरती है। स्वानुभूति की तीव्रता, प्रेम की अभिव्यक्ति, विरह का आधिक्य, भाषा का विचित्र सौष्ठव, शब्दों का अर्थगत सौंदर्य, लाक्षणिक प्रयोग, सहज एवं मार्मिक बिंबयोजना सभी मिलकर इन काव्यधारा को वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न 1. रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने अपनी रचनाओं में _____ को प्रधानता दी।

प्रश्न 2. रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने काव्य में स्वच्छंद प्रेम एवं _____ की प्रधानता दी है।

प्रश्न 3. रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने नारी सौंदर्य को _____ रूप में चित्रित किया है।

प्रश्न 4. रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि अपनी काव्य रचनाओं में _____ की व्यंजना करते हैं।

16.5 रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि

इस युग में इस दरबारी वातावरण से दूर रहकर निजी प्रेम की पीर को गाने वाले स्वच्छंद चितेरे कवि भी थे जो रीतिमुक्त कवि कहलाए। इन रीति इतर कवियों ने भक्ति, नीति, वीरता, वैद्यक चिकित्सा तथा ज्योतिष आदि विषयों पर भी काव्य-सृजन किया। इन कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथों की रचना की और न रीतिकालीन परंपराओं को ही निभाया। इस प्रकार के दबाव से पूर्णतः स्वतंत्र रहकर विशुद्ध श्रृंगार की आत्मानुभूतिपरक कविता लिखी। विरक्ति-भावना और प्रकृति-चित्रण से संबंधित मुक्त काव्य रचने वाले ये रीतिमुक्त कवि निज प्रेम

की पीड़ा को गाते-सुनाते रहे। इस तरह के कवियों में घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा एवं द्विजदेव जाने जाते हैं।

इन कवियों की मूल प्रवृत्ति रूप सौंदर्य पर रीझने और सौंदर्य के मार्मिक संवेदनात्मक वर्णन करने की रही है। प्रेम में विरह पक्ष की महत्ता एवं विशिष्टता को इन सभी ने स्वीकृति दी है। निजी प्रेम की अनुभूति को वैयक्तिकता का स्वर देकर मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करना इनकी विशिष्टता रही है।

16.6 सार - संक्षेप

रीतिमुक्त काव्यधारा 17वीं और 18वीं शताब्दी में विकसित हुई, जिसमें कवियों ने पारंपरिक काव्यशास्त्र, दरबारी रीति-परंपराओं और शास्त्रीय नियमों को नकारते हुए अपनी स्वच्छंद, व्यक्तिगत और स्वाभाविक अनुभूतियों को काव्य का विषय बनाया। इन कवियों ने न केवल प्रेम, विरह और शृंगार को अपनी रचनाओं का केंद्र बिंदु बनाया, बल्कि जीवन की गहरी संवेदनाओं को एक नया आयाम दिया। इनकी कविताएँ तात्कालिक सामाजिक बंधनों, जाति-धर्म और वर्ग से परे, स्वच्छंद प्रेम की भावना को व्यक्त करती हैं।

इन कवियों का प्रेम स्थूलता से मुक्त, अत्यधिक सूक्ष्म, मार्मिक और भावनात्मक था। वे प्रेम के अंतर्गत नारी सौंदर्य, शृंगार के रहस्य और विरह की वेदना को अपने काव्य में चित्रित करते थे। रीतिमुक्त कवियों ने नारी के सौंदर्य को एक नई दृष्टि से देखा, न केवल शारीरिक रूप में, बल्कि उसकी मानसिक और आत्मिक सुंदरता को भी प्रस्तुत किया। इनके काव्य में प्रेमी और प्रेयसी की भावनाओं का स्वाभाविक और वास्तविक चित्रण मिलता है।

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि जैसे घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव ने अपने काव्य में सरलता, सच्चाई और भावनाओं की गहराई को प्रमुखता दी। इन कवियों ने अपने समय की राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों से दूर रहते हुए निजी प्रेम और आत्माभिव्यक्ति पर आधारित कविताएँ लिखीं।

इनकी काव्यशैली में स्वच्छंदता, भावनाओं की प्रधानता और व्यक्तिगत अनुभवों की बारीकी से अभिव्यक्ति होती है। इन कवियों के योगदान ने हिंदी काव्य धारा को एक नया मोड़ दिया और इसे सामाजिक, धार्मिक और परंपरागत बंधनों से मुक्त किया।

16.7 मुख्य शब्द

- **स्वच्छंद प्रेम** - जाति, समाज और धर्म के बंधन से मुक्त प्रेम।
- **विरह** - प्रेमी और प्रेयसी का वियोग।
- **नारी सौंदर्य** - नारी के रूप और व्यक्तित्व का काव्य में चित्रण।
- **स्वाभाविक अभिव्यक्ति** - बिना किसी नियम के अपनी भावनाओं का व्यक्त करना।
- **वैयक्तिकता** - व्यक्तिगत अनुभवों को काव्य में व्यक्त करना।
- **सहजानुभूति** - सच्ची और स्वाभाविक अनुभूति।
- **आत्माभिव्यक्ति** - अपनी व्यक्तिगत भावनाओं और विचारों का काव्य में व्यक्त करना।

16.8 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. **स्वानुभूति**

उत्तर: 2. **रोमांसिकता**

उत्तर: 3. **सूक्ष्म एवं उदात्त**

उत्तर: 4. **प्रेम की पीड़ा**

16.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रीतिमुक्त काव्यधारा - लेखक: डॉ. महेन्द्र कुमार, राष्ट्रीय पुस्तक केन्द्र, दिल्ली, वर्ष: 2005
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - लेखक: के.के. शर्मा, रचनाकार प्रकाशन, जयपुर, वर्ष: 2010
3. काव्यधारा और साहित्य का विकास - लेखक: डॉ. शंकर दयाल, साहित्य अकादमी, दिल्ली, वर्ष: 2003
4. हिन्दी साहित्य में काव्यधारा का विकास - लेखक: डॉ. राकेश सिंह, श्यामा पब्लिकेशन्स, भोपाल, वर्ष: 2012

16.10 अभ्यास प्रश्न

1. रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताओं को संक्षेप में स्पष्ट करें।
2. रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों के प्रेम और विरह को किस प्रकार चित्रित किया गया है? उदाहरण सहित समझाएं।
3. रीतिमुक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में शृंगार और भक्ति के विषय में किस दृष्टिकोण से काव्य रचनाएँ कीं?
4. रीतिमुक्त काव्यधारा और रीतिकाव्यधारा में मुख्य अंतर को स्पष्ट करें।
5. "नारी सौंदर्य" को रीतिमुक्त काव्यधारा में किस प्रकार चित्रित किया गया है? कुछ उदाहरण प्रस्तुत करें।